Photo by B. Bhansali

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

कैसी बनायी है हमने शकल?

प्रेषक :
ए. ए. सैयद, पालनपुर

अब भारत के सभी मुख्य सिनेमा गृहों में
प्रदर्शित किया जा रहा है।

चन्दामामा

वर्ष ७ ज़नवरी १९५६ अंक ५

विषय - सूची

[चाहे आप कोई भी भाषा बोलते हों, कहीं भी रहते हों, आप अपनी भाषा में, अपनी जगह "चन्दामामा" मँगा सकते हैं।]

वार्षिक चन्दा
रु. ४—८—०

एक प्रति
रु. ०—६—०

बिड़ला
कटेली चम्पा
केश तैल
अनुपम गन्ध
एवं केश शोभा
केलिये

वीर-बच्चा
बच्चों की ताकत के लिये
अनुपम टानिक
बिड़ला लेबोरेटरीज, कलकत्ता ३०

दी बी. एन. के. प्रेस लिमिटेड
चन्दामामा बिल्डिंग्स :: मद्रास-२६
हम प्रत्येक व्यक्ति और व्यापारिक संस्थाओं को आश्वासन देना चाहते हैं कि कलात्मक सृजन, स्वच्छतम कार्य-निपुणता, आकर्षणीय छपाई और शीघ्र वितरण हमारा ध्येय है।
अंग्रेजी, हिन्दी, तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मराठी, गुजराती, मलयालम और उड़िया में छपाई का कार्य लिया जायगा।
फ़ोन :
८८५७४
BNK PRESS LTD
PRINTERS
MADRAS, 26.

डोंगरे
बालामृत
के.टी. डोंगरे एण्ड कंपनि
बम्बई ४

चन्दामामा

संचालक : चक्रपाणी

इस अंक के साथ नव वर्ष प्रारम्भ होता है। वर्ष के प्रारम्भ में प्रायः बड़े-छोटे नये नये इरादे बनाते हैं, नयी नयी योजनायें तैयार करते हैं। यह काम वांछनीय और उपयोगी भी है।

भारत सदियों की गुलामी के बाद अपना निर्माण कर रहा है। इस निर्माण-कार्य में हर भारतीय की अपनी अपनी जिम्मेवारी है। समाज की उन्नति में ही हमें अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

बालक-बालिकाओं के भी अपने कर्तव्य हैं। वे ही भावी भारत के स्तम्भ हैं। भारत का भविष्य उनका भविष्य है। चाहे आप कोई भी निश्चय करें, पर इस सत्य को ध्यान से ओझल न होने दें।

जनवरी १९५६ | वर्ष : ७ अंक : ५

राजा और किसान

बहुत दिनों पहले रहता था
किसी गाँव में एक किसान,
लगा रखा उसने था सुन्दर
फल-पुष्पों का इक उद्यान!

रंग-बिरंगे फूल वहाँ थे
और फलों की थी भरमार,
कहीं लटकते द्राक्षा-केले,
कहीं विहँसते थे कचनार!

इससे बढ़कर नहीं जगत में
सुन्दर कोई बाग कहीं है,
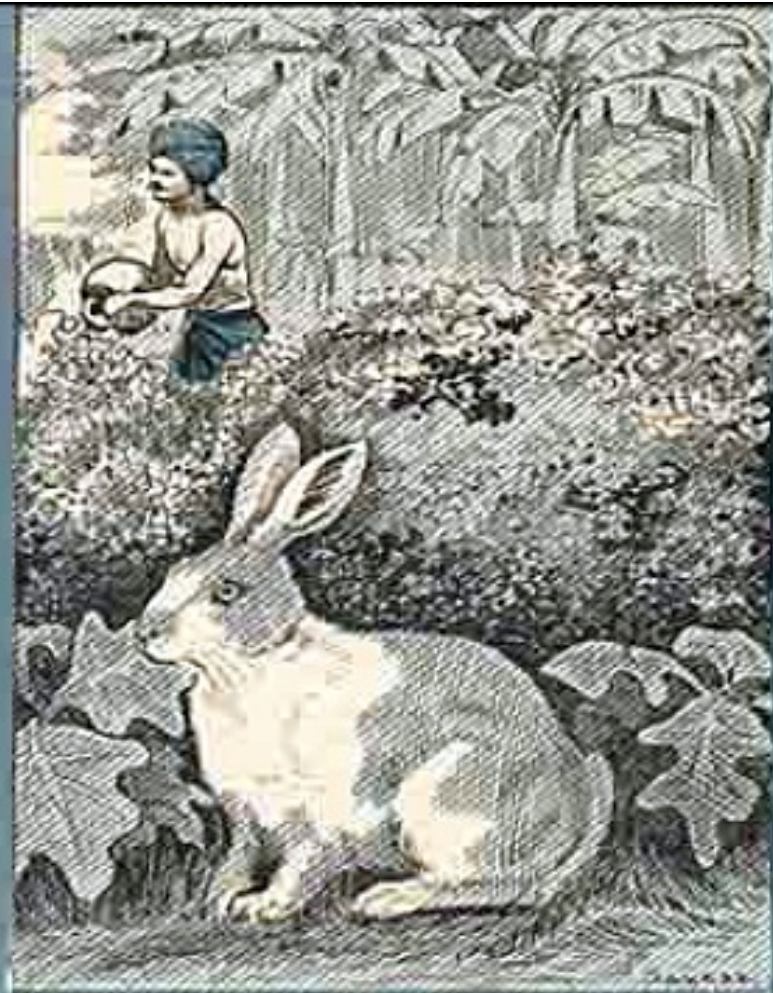
सोच सोच यह कहता मन में
जग में सबसे सुखी वही है।

उसी बाग में लेकिन था इक
खरहा, चतुरों का सरताज;
धीरे धीरे सब पौधों को
करने लगा वही बरबाद।

फिर तो खुशियाँ लुटीं कृषक की
चिंता से बेहद घबड़ाया।
बहुत कोशिशें करके हारा
पर खरहे को पकड़ न पाया।

चारा उसको दिखा नहीं जब
तो राजा के पास गया वह,

और शिकायत कर खरहे की
सिर धुन धुनकरके रोया वह ।

राजा ने सारी बातें सुन
शीघ्र एक सेना बुलवायी,
लाओ अभी पकड़ खरहे को
ऐसी झट आज्ञा दिलवायी ।

घुड़सवार औ' कुत्तों को ले
फिर तो कूच किया सेना ने,
धावा बोल दिया तुरत ही
घेर बगीचे को सेना ने ।

आनन फानन में कानन की
सारी शोभा चली गयी,

* * * *
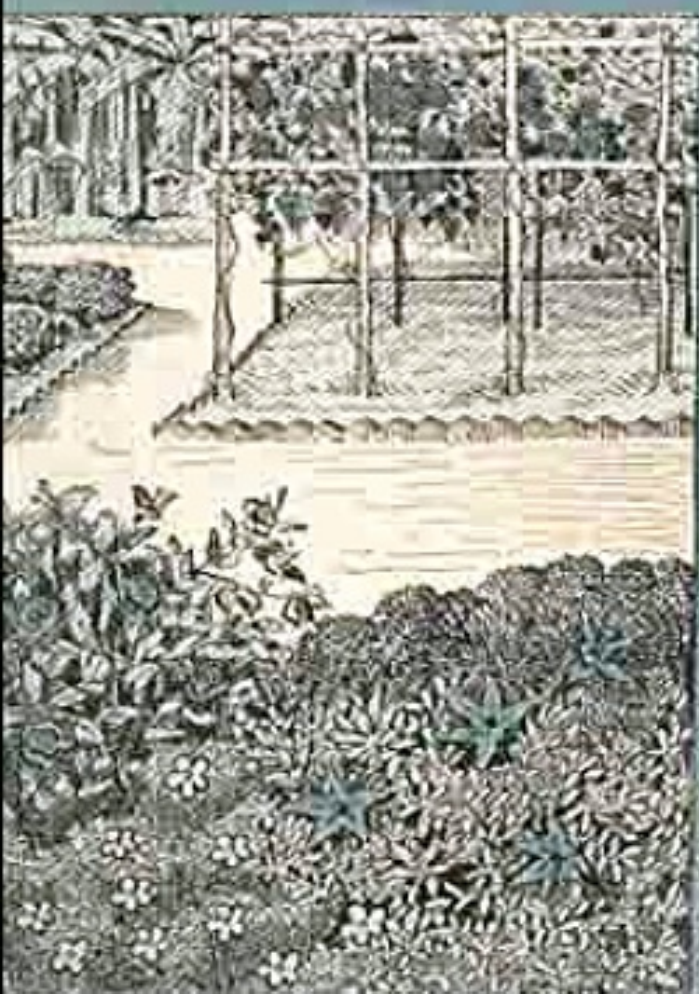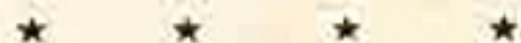
तहस-नहस कर पौधों को ही
सेना सारी चली गयी ।

सर्वनाश यह देख कृषक ने
अपना ही सिर पीट लिया,
मदद बड़े की गया माँगने
यही न उसने ठीक किया ।

बलशाली की मदद माँगना
है लेने के देने पड़ना,
दीनों को तो सदा चाहिए
तकलीफ़ें सब खुद ही सहना ।

सुख – चित्र

किसी ज़माने में कौशिक नाम का ब्रह्मचारी रहा करता था। बूढ़े माँ - बाप को भी छोड़-छोड़कर, कौशिक बड़ी लगन से तपस्या करने लगा।

जब कौशिक पेड़ के नीचे बैठा तपस्या कर रहा था, तो पेड़ पर बैठे बगुले ने उस पर दग दिया। कौशिक को बड़ा गुस्सा आया और उठकर पेड़ पर बैठे बगुले की ओर देखने लगा। तुरन्त बगुला छटपटाकर ठंडा हो गया!

कौशिक भिक्षा माँगते-माँगते एक घर में पहुँचा। उसी समय उस घर का मालिक भी आया। उनकी पत्नी, पति को खिला पिलाकर उनके पैर दबाकर, उनके सो जाने पर भिक्षा लाई। कौशिक ने आग बबूला होते हुए कहा—"मुझ से इतनी देर इन्तज़ार करवाई ! मुझे क्या समझ रखा है !"

"बेटा! तुम वही कौशिक हो न जिसने अपनी तपस्या के बल से बगुले को जला दिया था ? बाहर से आये हुए पति की सेवा करना क्या पत्नी का कर्तव्य नहीं है ! क्यों बिना जाने समझे बिगड़ते हो !"—गृहिणी ने पूछा।

कौशिक यह सुनकर बड़ा शर्मिन्दा हुआ। "माँ! मैं नहीं जानता, धर्म और कर्तव्य क्या हैं ! क्या आप कृपया बता सकेंगी ?"—कौशिक ने कहा।

"तुम्हें धर्म का ज्ञान देनेवाला धर्मव्याध ही है। वह मिथिला में रहता है। तुम उसके पास जा धर्म के बारे में ज्ञान प्राप्त करो"—गृहिणी ने कहा।

कौशिक उसके कथनानुसार मिथिला गया। जब उसे मालूम हुआ कि वह कसाई है, उसे बड़ा बुरा लगा। तब भी वह उसकी दुकान पर गया।

"ब्राह्मण! मैं जानता हूँ, तुम किसलिए मेरे पास आये हो। चलो घर चलें" धर्मव्याध यह कहता कहता उसको अपने घर ले गया।

कौशिक को तब पता लगा कि धर्मव्याध कितना पितृ-भक्त और मातृ-भक्त था। कौशिक ने धर्मव्याध से कई धर्म की बातें सीखीं और उसने माँ-बाप की सेवा करते हुए मुक्ति पाई।

अन्यायी पति

जब ब्रह्मदत्त काशी का राजा था, बोधिसत्व उसके पण्डित अमात्य के रूप में पैदा हुए।

एक बार की बात है कि ब्रह्मदत्त, अपने पुत्र पर बहुत ही क्रुद्ध हुआ, और उसको उसने राज्य से बाहर भेज दिया। राजा के लड़के को परदेश में, अपनी पत्नी के साथ, बहुत कष्ट सहने पड़े। उनके पास न पहिनने के कपड़े थे, न धूप-वर्षा से बचने के लिए ठीक छत ही। खाने के तो लाले थे ही। पर उसकी पत्नी ने, बिना कोसे-कुढ़े, पति के साथ सब कष्ट सहे।

कुछ दिनों बाद, ब्रह्मदत्त मर गया। उसका लड़का अब आसानी से अपने राज्य में आ सकता था। जब राजकुमार को यह पता लगा कि उसके पिता की मृत्यु हो गई है, वह बहुत ही आनन्दित हुआ। अब वह इसी चिन्ता में था कि कब काशी पहुँचा जाय और कब राज-सिंहासन पर बैठा जाय। वह काशी की ओर जल्दी जल्दी चल पड़ा। पर उस मूर्ख को यह भी न पता था कि उसकी पत्नी, उसके साथ तेज़ी से नहीं चल सकती, उसने भी उसके साथ अनेक कष्ट सहे हैं, इसलिये उसको पत्नी की परवाह करनी चाहिये। वह रात-दिन, चलता रहा, साथ अपनी पत्नी को भी अविराम चलाता गया।

पर वह भी बिना खाये-पिये कितनी दूर जा सकता था! पत्नी को जैसे भूख सता रही थी, उसे भी सताने लगी। भूखे-प्यासे, चलते चलते वे एक गाँव में पहुँचे। वहाँ कई ने इनकी बुरी हालत देखकर कहा—"बेटा! लगता है, बड़े भूखे हो; खाली पेट चलते जा रहे हो! कुछ खाने-पीने के लिए बाँधकर ले जाओ।"

ब्रह्मदत्त का लड़का, पत्नी को एक जगह आराम करने के लिए कह, स्वयं भोजन देनेवालों के साथ चल दिया। उन्होंने दोनों के लिए, खाने की चीज़ें एक पोटली में बाँधकर दीं। पोटली लेकर पत्नी के पास आते हुए उसने इस प्रकार सोचा :

"अगर इस भोजन को दोनों ने मिलकर खाया तो जल्दी ही भूख लगेगी। फिर न जाने भोजन मिले कि नही! उसको अभी बहुत दूर जाना था। उसका काशी पहुँचना आवश्यक था, न कि उसके पत्नी का। सच पूछा जाय, तो जल्दी पहुँचने में, यह ही रुकावट पैदा कर रही थी। इसलिये, कुछ भी हो, उसे ही उस पोटली का सारा भोजन खा लेना चाहिये।

यह सोचता हुआ वह पत्नी के पास पहुँचा और उसने उससे कहा—"तुम आगे आगे चलो, मैं ज़रा शौच आदि से निवृत्त हो जाऊँ।" उसकी पत्नी, उसकी बातों का विश्वास कर, आगे चलती गई। उसके जाने के बाद, राजकुमार ने स्वयं सारा खाना खा लिया, और खाली पत्तों की पोटली बाँधकर उसके पीछे चल दिया। जल्दी जल्दी उससे आ मिला। उसने पोटली खोलकर उसे दिखाते हुए कहा—"गाँववाले बड़े धोखेबाज़ हैं, ठग हैं। खाली पत्ते बाँधकर दे दिये।"

उसकी पत्नी सच जान गई, पर उसने कुछ कहा नहीं। थोड़े दिन और सफ़र करने के बाद वे जैसे-तैसे काशी पहुँचे। ब्रह्मदत्त के लड़के का पट्टाभिषेक हुआ और वह राजा बना दिया गया।

जब वह राजा हो गया तो उसनी अपनी पत्नी की पूछ-ताछ करनी ही बिल्कुल छोड़ दी। उसे यह ख्याल भी न आया कि पत्नी को भी, जिसने उसका कष्टों में साथ दिया था, उसके सुख में भी हिस्सा लेना का हक़ था।

उसने अच्छा पहिना है कि नहीं, खाया है कि नहीं, इन बातों के बारे में, राजा ने कभी भूलकर भी न पूछा। यद्यपि कष्ट के दिन गुज़र गये थे, पर रानी अब भी पहिले की तरह हमेशा चिन्तित रहती।

राजा के पास बोधिसत्व पण्डित आमात्य के पद पर काम कर रहे थे न! रानी की हालत उनको मालूम हुई और वे रानी को स्वयं देखने गये। रानी ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया।

"आपका कष्ट-काल समाप्त हो गया है! अब अच्छा समय प्रारम्भ हुआ है, इसलिये राजा ने हम सब को बहुत दान-दक्षिणा भी दी है। परन्तु आपके हाथ से मुझे अभी तक कुछ न मिला।"—बोधिसत्व ने रानी से कहा।

"अमात्य! मैं केवल नाम मात्र के लिए रानी हूँ। परन्तु वस्तुतः मुझ में और अन्तःपुर की दासियों में कोई अन्तर नहीं है। वह रानी भी क्या रानी कहलायेगी, जो राजा के साथ कष्ट तो सहे, पर उसके सुख में सम-अधिकारिणी न हो। आप ही बताइये।" कहते हुए रानी ने यह भी बताया कि कैसे रास्ते में राजा ने, बिना उसको कुछ खाने को दिये, स्वयं सारी पोटली खतम कर दी थी। "अब भी मेरा पति यह नहीं सोचता कि मैं सुखी हूँ कि नहीं, मेरे पास कपड़े हैं कि नहीं, मैं अच्छी तरह खा-पी रही हूँ कि नहीं। उनको मेरी कोई फ़िक ही नहीं है।" रानी की आँखों में आँसू आ गये।

"आप चिन्ता न कीजिये। यह बात आप के मुह सुनने के लिए ही मैं आया था। कल भरे दरबार में आपसे ये ही प्रश्न करूँगा, जो मैंने अभी पूछे थे। अगर आपने यही उत्तर दिये, तो मेरी जिम्मेवारी यह रहेगी कि

आपको किसी प्रकार का कष्ट न हो।"— बोधिसत्व ने कहा।

अगले दिन दरबार में रानी भी आई। उनको देखकर बोधिसत्व ने कहा—"रानी जी के राज्य में आने के बाद नौकर-चाकरों की पूछ-ताछ नहीं हो रही है।"

रानी ने, जो जो बात बोधिसत्व से कही थी, दरबार में उन्हें फिर दुहरा दीं। जब उसने यह बताया कि राजा ने उसके हिस्से का खाना भी खुद खा लिया था, तो राजा बहुत ही शर्मिन्दा हुआ।

रानी के कथन के समाप्त होने के पहिले ही बोधिसत्व ने कहा—"जब राजा आपके प्रति आदर नहीं दिखाते हैं, तब आपका उनके साथ रहना अनावश्यक है।

"चजे चजन्तं, वन्थं न कइरा
अपेत चित्तेन न सम्भजेय्य,
द्विजो दुमं खीन फलन्ति ञत्वा
अञ्ञं समेक्खेय्य, महाहि लोके।

(जिसने छोड़ दिया हो, उसको छोड़ा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति का स्नेह न करो। विमुख मनवाले से न मिलो। पक्षी भी बिना फलवाले पेड़ों को छोड़कर फलवाले पेड़ पर चले आते हैं। यह संसार विशाल है।)

"इसलिये आप संसार में ऐसी जगह चली जाइये, जहाँ आपका आदर होता हो।"— बोधिसत्व ने कहा।

तुरन्त राजा सिंहासन पर से उतर आया, और बोधिसत्व के चरणों पर पड़ कहने लगा—"पण्डित अमात्य! मुझे क्षमा कीजिये। मेरी मर्यादा की रक्षा कीजिये। अब से मैं अपनी पत्नी के प्रति कभी उदासीन न रहूँगा। उसकी अच्छी तरह देखभाल करूँगा।"

तब से राजा-रानी, एक दूसरे का यथोचित सम्मान करते हुए, सुख से अपना जीवन-व्यापन करने लगे।

[६]

[शिवदत्त की सलाह के अनुसार स्वयं समरसेन ने सेना का नेतृत्व स्वीकार कर लिया था न ! सेना एकत्र करने के लिए नरवाहन को भेजा गया। वह जनता और सैनिकों द्वारा पिट-पिटाकर वापिस आया। आखिर, लाचार हो मृगशालाधिपति ने पिंजड़ों में से क्रूर जन्तुओं को खोल दिया था। बाद में—]

जब शिवदत्त ने यह बताया कि समरसेन ने किस प्रकार के प्रश्न उससे पूछे थे, मन्दरदेव तो मुस्कराया।

"नगर के बाहर के शत्रु, और अन्दर की प्रजा-दोनों ही चाहते थे कि राजा गद्दी से उतार दिया जाय! बाद में भले ही कोई राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ले। यही न?"—मन्दरदेव ने गंभीर होकर पूछा।

"हाँ हाँ" कहते कहते शिवदत्त ने सिर हिलाया। समरसेन को तब भली-भाँति सोचने-विचारने का समय न मिला। सब जगह गड़बड़ी थी। इसी कारण मैंने कहा "हाँ सेनापति! वर्तमान परिस्थिति यही मालूम होती है। अगर मुझ से पूछा जाय तो मैं यही कहूँगा कि राजा को गद्दी पर से उतारकर, नगर की प्रजा की सहायता से शत्रुओं को दबा देना अच्छा होगा।"

"यह मैं भी सोच रहा हूँ। चित्रसेन बूढ़ा हो गया है। उसका कोई उत्तराधिकारी भी नहीं है। सम्भवतः ये राज सिंहासन

छोड़ना स्वीकार कर लें। यदि एक बार नगर की प्रजा शान्त कर दी गई, तो बाहर के शत्रुओं का मुक़ाबला करना उतना कठिन न होगा।"—समरसेन ने अपना ख्याल दुहराया। वे चिन्तित जान पड़ते थे।

हम बातें कर ही रहे थे कि राजा चित्रसेन वहाँ आ ही पहुँचे। जिन लोगों ने राजा को उस तरफ़ आते देखा था, वे बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगे—"राजा का नाश हो, राजवंश का नाश हो। हम उनको नहीं चाहते, वे गद्दी से उतरें।"

चित्रसेन, हमारे नज़दीक आये। आते ही उन्होंने कहा—"समरसेन! हम सारी परिस्थिति जानते हैं, समझते हैं। क़िले के बुर्ज़ से मैंने सैकड़ों शत्रुओं को, आक्रमण के लिए सन्नद्ध होते देखा, उनके लगे हुए तम्बू भी देखे। नगर की प्रजा के आन्दोलन से भी मैं अपरिचित नहीं हूँ। वह राजा, जो अपने विनोद-विलास में, प्रजा का कल्याण भूल जाये, वह राज-सिंहासन पर बैठने लायक नहीं है। मैं प्रजा की इच्छा के अनुसार केवल राज-सिंहासन का ही त्याग नहीं करना चाहता, बल्कि उससे

बड़ा त्याग करना चाहता हूँ।"—कहता कहता राजा मण्डप में आया।

चित्रसेन की यह बात सुनकर मैं और समरसेन हक्के-बक्के रह गये। हमारे मुख से बात तक न निकली। चित्रसेन, प्रजा को सम्बोधित करके, हाथ हिला हिलाकर कह रहा था—"कुण्डलिनी द्वीप के वासियो! मैं आपके आन्दोलन और आपकी उचित माँग के बारे में जानता हूँ। मुझे दुःख है कि मैं भोग-विलास में फँसकर, आपकी कठिनाइयों को बहुत दिनों तक न जान सका। इसलिये आपकी यह माँग कि मैं राज-सिंहासन छोड़ दूँ, बिल्कुल न्याययुक्त और उचित भी है। मैं केवल राज-किरीट ही नहीं, अपितु उससे बड़ी चीज़ को भी छोड़ने जा रहा हूँ। परन्तु आप सब, अपने सेना-नायक समरसेन की आज्ञाओं का पालन कीजिये और उनका समर्थन कीजिये। इसी में आपका कल्याण है।"

तुरन्त जनता राजा का 'जय जयकार' करने लगी। और राजा चित्रसेन मण्डप से नीचे कूद गया। यह सब कुछ क्षण भर में हो गया। मैंने और समरसेन ने नीचे देखा। तब तक राजा के प्राण समाप्त हो चुके थे।

वे हिल-डुल न रहे थे। क्रूर जन्तु भी, अचानक, किसी को कूदता देखकर यह बिना जाने कि कौन कूद रहा है, इधर उधर तितर बितर होकर भाग गये।

"सब ख़तम हो गया है। अब कुछ बाकी नहीं है।" कहता कहता समरसेन खम्भे के सहारे गिर-सा गया। उसकी आँखों में आँसू आ गये। वे मूर्छित-से लगते थे।

मैंने जनता की ओर देखा। सब जगह ख़ामोशी थी। इस आकस्मिक घटना के कारण वे स्तब्ध थे। समरसेन निर्जीव-सा हो गया। नरवाहन भी घबरा-सा गया था।

तब वहाँ मृगशालाधिपति भागा भागा आया। "सेनानी! अब, अब" वह कुछ कहना चाहता था, पर कह नहीं पा रहा था। वह काँप रहा था।

मैंने उसको इशारा कर अपने पास बुलाकर कहा —"अब यह देखो कि ये क्रूर-जन्तु फिर से अपने पिंजड़ों में बन्द कर दिये जायें। यह काम जितनी जल्दी हो जाय, उतना ही अच्छा है। एक दो मिनिट में मैं क़िले की ड्योढ़ी खुलवाने जा रहा हूँ। महाराजा की लाश आँगन से हटाकर, किसी दूसरे सुरक्षित स्थान पर अच्छी तरह से रखवाओ।"

समरसेन मेरी बात सुन रहा था। कुछ दूर खड़े नरवाहन ने मेरी तरफ़ तिरछी नज़र से देखा, फिर वह मण्डप में चला गया। न जाने वह क्या सोच रहा था!

थोड़ी देर में क्रूर-जन्तुओं को, उनके पिंजड़ों में बन्द कर दिया गया। चित्रसेन की लाश भी आँगन से हटा दी गई। मैं और समरसेन राजमहल से ड्योढ़ी की तरफ़ गये। हम ड्योढ़ी के पास पहुँचे ही थे कि जनता 'जय जयकार' करने लगी "जय समरसेन की! समरसेन की जय।"

उनके 'जय जयकार' से आकाश गूँज रहा था। उन में एक विचित्र उत्साह आ गया था। बड़ा शोर हो रहा था।

ड्योढ़ी खोल दी गई। समरसेन दो चार कदम आगे बढ़ा और गला ठीक कर कहने लगा—"कुण्डलिनी द्वीप वासियो!" उसके यह ज़ोर से कहते ही, सब शोर सहसा समाप्त हो गया। "जो कुछ गुज़र गया है, मैं उसके बारे में ज़िक्र नहीं करना चाहता हूँ।"—समरसेन ने कहा। "देश में अराजकता फैली हुई है, यह बात सच है। इसके लिए, कौन कितने जिम्मेवार हैं, यह अब सोचने का विषय नहीं है। आज राजा नहीं है, इसलिए राज-भक्ति की भी अवश्यकता नहीं है। आज आवश्यक है कि प्रत्येक देशवासी देश-भक्त हो, देश की एकता की रक्षा करें। देश को शत्रुओं के आक्रमण से बचायें।"

"कुण्डलिनी द्वीप की जय"—जनता एक कंठ से चिल्लाती रही।

"नगर से बाहर, शत्रुओं की बलवती सेना, नगर पर आक्रमण करने के लिए तैयार खड़ी है। पहिले नगर की रक्षा, बाद में देश-रक्षा। हर व्यक्ति, जो हथियार चला सकता हो, युद्ध के लिए तैयार हो जाये। देश-रक्षा हर देशवासी का कर्तव्य है। आप अपने कर्तव्य का पालन कीजिए।"—समरसेन ने कहा।

जनता में उथल-पुथल मची। सब के सब एक साथ आगे बढ़ने लगे। "मुझे तलवार दीजिये, मुझे बाण"—यही चिल्लाना सर्वत्र सुनाई पड़ता था। लोगों में धक्कम-धक्का-सी होने लगी।

समरसेन ने मुड़कर देखा। उसकी नज़र पीछे खड़े नरवाहन पर पड़ी। "इस बार तुम्हारा काम आसान है। सेना को
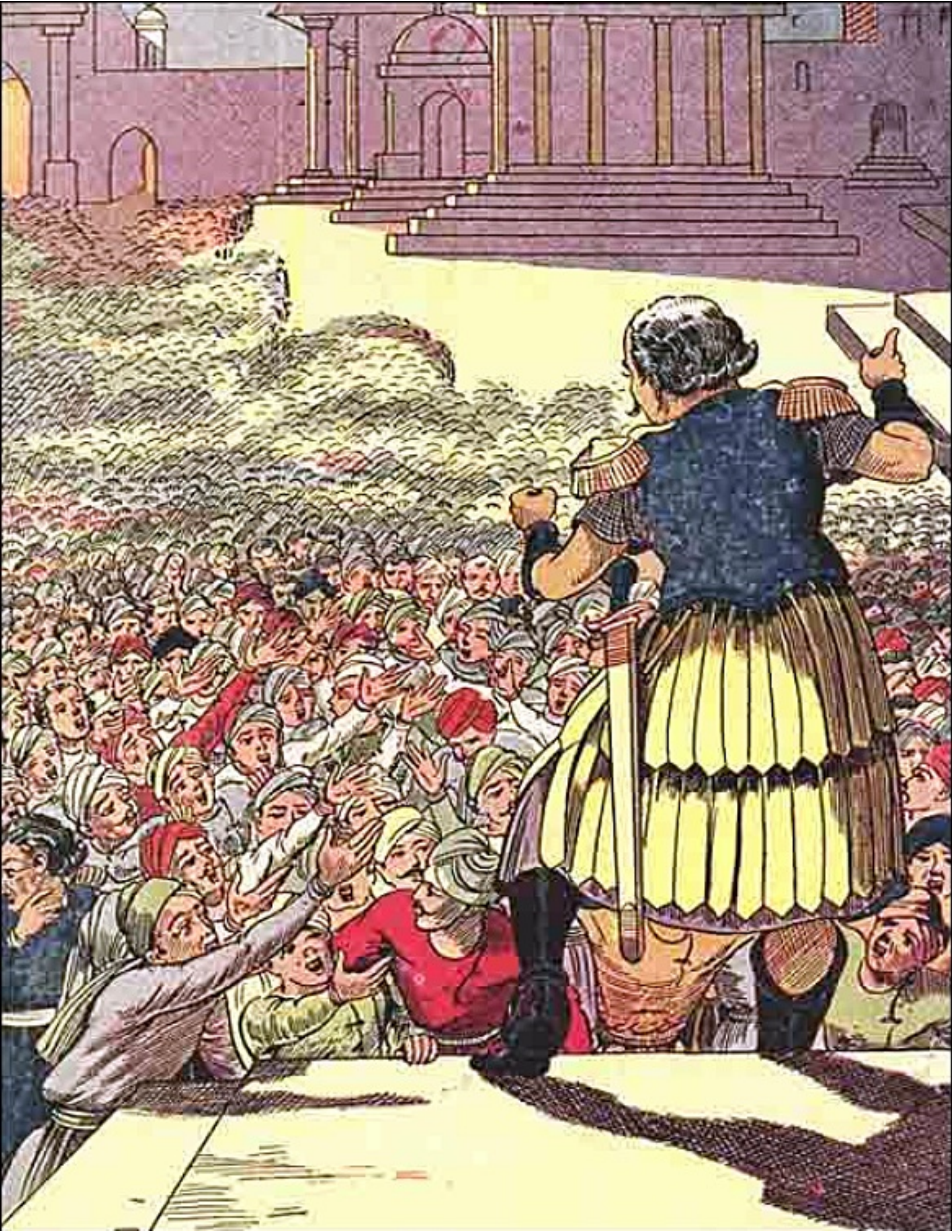
तैयार करो"—कहते कहते समरसेन पीछे की ओर चला। वे अब कुछ निश्चिन्त-से दिखाई देते थे।

मैं, और समरसेन वहाँ से क़िले के बुर्ज पर गये। दूरी पर शत्रुओं के असंख्य तम्बू दिखाई दिये। चींटी की तरह दिखाई देनेवाले वे शत्रु उन तम्बुओं के सामने व्यायाम कर रहे थे। सब एक पंक्ति में तैनात खड़े थे।

"शिवदत्त! शत्रु कोई अनाड़ी नहीं है। वे काफ़ी सीखे-समझे नज़र आते हैं। उनकी परेड से मालूम होता है कि वे व्यूह-रचना, युद्ध आदि में, प्रवीण लगते हैं"—समरसेन ने कहा।

समरसेन का कहना बिल्कुल ठीक था। शत्रुओं की तैयारी देखकर सचमुच ऐसा लगता था कि वे कोई अशिक्षित विद्रोही नहीं हैं, पर उनकी अपनी एक सुसज्जित सेना है। युद्ध के सब साधन भी उनके पास मौजूद थे।

मैंने क़िले की दीवार के बाहरवाली खाई की ओर देखा। उसमें काफ़ी पानी नहीं था। तुरन्त मैंने एक सिपाही को बुलाकर आज्ञा दी कि खाई भर दी जाय।

तब समरसेन ने मेरी तरफ़ मुड़कर कहा—"शिवदत्त! मुझे ही सेना के नेतृत्व-कार्य संभालना पड़ा। इसके सिवाय कोई चारा नज़र नहीं आता। तो क़िले की रक्षा का भार तुम्हें सौंप दूँ। जल्दी कहो, तुम्हारी क्या राय है?"

मैं तुरन्त उस प्रश्न का जवाब न दे सका। अगर मैं क़िले की रक्षा की जिम्मेवारी लेता तो इसका मतलब यह हुआ कि मैं सेना के साथ शत्रु का मुक़ाबला करने न जा सकूँगा। उस हालत में, नरवाहन ही उप सेनापति के रूप में समरसेन के साथ

आ सकेगा। मैं दुविधा में इस उलझन से बाहर निकलने का उपाय सोच ही रहा था कि नरवाहन वहाँ सीना तानकर आ पहुँचा।

"महासेनानी! मैंने सुशिक्षित सैनिकों को एकत्र कर लिया है। जनता में चार हज़ार हट्टे-कट्टे आदमियों को चुनकर मैंने हथियार दे दिये हैं। वे युद्ध के लिये उतावले हो रहे हैं। बतलाइये, अब क्या किया जाय!"—नरवाहन ने पूछा।

समरसेन ने मेरी तरफ़ मुड़कर कहा—"नगर की रक्षा के लिए दो हज़ार आदमी काफ़ी होंगे, मैं समझता हूँ।" मैंने भी सिर हिला दिया। "अच्छा तो, नगर की रक्षा की जिम्मेवारी तुम्हारी रही। मैं दो हज़ार सैनिक, और दो हज़ार हथियार बन्द आदमियों के साथ, शत्रुओं पर धावा बोलने जा रहा हूँ। हमारे बाहर जाते ही, नगर के द्वार बन्द कर देना। समझे"—समरसेन ने कहा।

सेना के, नगर की ड्योढ़ी से बाहर जाते ही, मैं अपने पचीस सिपाहियों को लेकर, नगर की मोर्चाबन्दी देखने निकल गया। जब मैंने मामूली हथियार-बन्द आदमियों को देखा तो मुझे ऐसा लगा कि वे यह भी न जानते थे कि हथियार कैसे पकड़े जाते हैं।

उनको एक साथ, एक पंक्ति में खड़ा करना, बहुत मुश्किल काम था। तिस पर वे आपस में, इधर उधर की बातें कर कर, गुटों में बँट गये थे और आपस में लड़ाई-झगड़ा मोल लेने के लिए उतावले हो रहे थे।

(अभी और है)

स्वार्थ कष्टों की जड़ है !

एक व्यापारी एक गधे, और एक घोड़े पर माल लादकर सफ़र कर रहा था। गधे पर बहुत भार लदा था। चलते चलते उसकी यह हालत हो गई कि वह आगे न चल सका।

तब गधे ने घोड़े से कहा—"भाई! अगर मेरी यही हालत रही तो मैं ज़्यादह दूर न जा सकूँगा। मेहरबानी होगी, अगर मेरा थोड़ा-सा वज़न तू भी ले ले।"

घोड़ा इसके लिए कतई राज़ी न हुआ। उसने कहा—"मैं भला तेरा भार क्यों ढोऊँ! जो जिसके नसीब में लिखा है, वह उसे भुगतना ही होगा।"

थोड़ी दूर बाद, थकान के कारण गधा गिरकर मर गया। व्यापारी ने तुरन्त गधे की खाल निकाली। गधे के भार और उसकी खाल घोड़े पर लाद कर वह चलता गया।

अब घोड़े पर बहुत वज़न था। वह मुश्किल से पैर उठा पा रहा था। "अरे! क्या मुसीबत आ पड़ी। अगर गधे के पूछने पर तभी मैं उसका कुछ भार ले लेता तो यह आफ़त न आती। गधे को मैंने मरने दिया, अब मेरी जान ही शामत में है।"—गधा सोचने लगा।

आत्म - बलिदान

विक्रमार्क फिर पेड़ पर से शव को उतार कर, कन्धे पर डाल श्मशान की ओर चला। शव में स्थित वेताल ने अट्टहास कर कहा—"राजा! तुम्हें देखकर मुझे जीमूत वाहन की कथा याद आ रही है। समय काटने के लिये कहानी सुनाता हूँ, सुनो।" उसने यह कथा सुनाई :

हिमालय पर्वत में, कांचन नगर का परिपालन करता हुआ जीमूतकेतु नाम का राजा रहा करता था। उस राजा के महल के आँगन में एक कल्प-वृक्ष था। उस वृक्ष की कृपा से राजवंश के लोगों की सम्पूर्ण इच्छाएँ पूरी हो जाती थीं।

जीमूतकेतु के लड़के का नाम था जीमूत वाहन। जब वह बड़ा हुआ तो राजा ने वैभव के साथ उसको युवराज

वेताल कथाएँ

बनाया। उसी समय मन्त्रियों ने जीमूत वाहन से कहा—"युवराज! आपके वंश के लिए कल्प-वृक्ष का होना बहुत कल्याणकारी है। वह आपके पूर्वजों की सहायता करता आया है! आप भी उस कल्प-वृक्ष की प्रार्थना कर अपनी सब इच्छाओं को पूर्ण कर सकते हैं।"

यह सुनते ही जीमूत वाहन का प्रसन्न होना तो अलग, वह चिन्तित होकर सोचने लगा—"अफ़सोस है, मेरे पूर्वजों ने, कल्प-वृक्ष के होते हुए भी, हमेशा अपने स्वार्थ की परवाह की, परोपकार कभी न किया। इस जीवन में, परोपकार के अतिरिक्त सब क्षणभंगुर ही तो है! वे सब, जो इस कल्प-वृक्ष को अपना समझते थे, अब कहाँ हैं! कम से कम, मैं इस कल्प-वृक्ष का स्वार्थ के लिए उपयोग नहीं करूँगा।"

इस प्रकार सोचकर, जीमूत वाहन ने कल्प-वृक्ष के पास जाकर प्रार्थना की—"देव! न जाने कितनी पीढ़ियों से, जो कुछ मेरे वंशजों ने माँगा, आप उन्हें देते आ रहे हैं। कभी आपने न न की। मेरी आपसे एक ही प्रार्थना है। इस संसार में जितने आनाथ और अभागे हैं, उन सब की इच्छाएँ पूरी कीजिये, और उन्हें किसी चीज़ की कमी न होने दीजिए।"

तुरन्त कल्प-वृक्ष अदृश्य हो गया। भूमि पर अच्छी वर्षा हुई, खूब फ़सलें फलीं, और संसार में कोई भी दरिद्र न रहा।

जब सम्बन्धियों को ज्ञात हुआ कि जीमूतकेतु और जीमूत वाहन के पास कल्प-वृक्ष नहीं है, वे अपनी सेनायें लेकर कांचन नगर पर आक्रमण करने निकल पड़े। जीमूतकेतु उनका मुक़ाबला करने के लिए प्रयत्न करने लगा। परन्तु जीमूत वाहन ने अपने पिता से निवेदन किया—"पिता जी!

इस युद्ध से क्या लाभ है? क्या इस राज्य के लिए सम्बन्धियों की हत्या करना उचित है? थोड़े दिन उन्हें ही राज्य करने दीजिये। हम कहीं और जाकर इह और पारलौकिक सुख को प्राप्त करने का प्रयत्न करें।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा। जब तुम्हें ही राज्य की इच्छा नहीं है तो भला मैं क्यों युद्ध कर लोगों की खून-खराबी करूँ?"

जीमूत वाहन ने सम्बन्धियों को राज्य सौंप दिया। अपने माता-पिता को साथ लेकर, वह दक्षिण समुद्र के किनारे स्थित मलय पर्वत पर चला गया। वहाँ उसने एक आश्रम भी बना लिया। उस पर्वत पर सिद्ध जाति के लोग रहा करते थे। उस जाति के राजा के पुत्र मित्रावसु से जीमूत वाहन का स्नेह हो गया।

एक दिन जीमूत वाहन घूमता घूमता, पार्वती के मन्दिर के समीप पहुँचा। मन्दिर में वीणा के साथ किसी के पार्वती-पाठ करने की ध्वनि उसको सुनाई पड़ी। अन्दर जाकर देखने पर एक सुन्दर युवती दिखाई दी। उसने उसकी सहेली से मालूम कर लिया कि वह मित्रावसु की बहिन है, और उसका नाम मलयवती है। सहेली ने

गरुत्मन्त के लिए आहार बन जाऊँगा। तुम अपने लड़के को लेकर आराम से अपने घर चली जाओ।"

बुढ़िया, यकायक आनन्दाश्रु बहाती बहाती कहने लगी—"बेटा! तुम क्या अच्छी बात कह रहे हो! परन्तु जो ऐसी बात कह सकता है, क्या वह मेरे बेटे के बराबर नहीं है? क्या तुम्हारे मरने पर मुझे दुःख न होगा? यह न करो, बेटा! न करो।" यह तो बड़ा अन्याय होगा।

शंखचूड़ ने अपनी माँ को वहाँ से जल्दी जाने के लिए कहा। और वह गुरुत्मन्त के आने से पहिले, गोकर्ण की प्रार्थना करने चला गया। शंखचूड़ के वापिस आने के पहले ही गरुत्मन्त मँडराता आ पहुँचा। उसको आता देख जीमूत वाहन शिला के पास खड़ा हो गया। गरुत्मन्त उसी को नाग समझकर उसको खाने लगा। परन्तु गरुत्मन्त को एक बात पर आश्चर्य हुआ। वह बात यह थी कि वह नाग और नागों की तरह मरने से डर नहीं रहा था। उसके मुँह पर सिवाय शान्त भावना के और कुछ न था। इसमें क्या रहस्य है, यह गरुत्मन्त बिल्कुल समझ न पाया।

तब शंखचूड़ भागा भागा वहाँ आकर कहने लगा—"गरुत्मन्त! ठहरो, ठहरो! वह नाग नहीं है। मैं नाग हूँ। उसे मत खाओ। तुम मुझे ही खाओ। ठहरो ठहरो!"—वह यों चिल्लाता जाता था।

गरुत्मन्त ने हैरान होकर जीमूत वाहन की ओर देखा और पूछा—"अगर तू नाग नहीं है, तब तू क्यों यहाँ आया और मेरा आहार बन रहा है?"

"तेरा हृदय पत्थर का है। इसलिए बिना कुछ सोचे-विचारे रोज एक नाग को अपने पेट में रख लेता है। पर मैं जानता

हूँ, जीवन का कितना मूल्य है? इसी कारण, एक नाग को प्राण-दान करने के उद्देश्य से मैंने यह काम किया है। इसमें और कोई बात नहीं है।"—जीमूत वाहन ने कहा।

गरुत्मन्त को पश्चाताप हुआ। उसने कहा—"महात्मा! मैंने अनजाने बड़ा अपराध किया है। मुझे क्षमा करें।"

"रोज़ जान-बूझकर अपराध करनेवाले को कैसे क्षमा किया जा सकता है? रोज़ जिन नागों को खाता है, क्या वे मेरे जैसे प्राणी नहीं हैं?"—जीमूत वाहन ने पूछा।

"मैं अब कभी नागों का पीछा न करूँगा। मुझे क्षमा कीजिए"—गरुत्मन्त ने कहा। शंखचूड़ के प्राण बच गये। जीमूत वाहन घर चला गया।

यह कथा सुना वेताल ने पूछा—"राजा! इन दोनों में कौन बड़ा है? शंखचूड़ के बदले अपने प्राण की आहुति देनेवाला जीमूत वाहन या जीमूत वाहन को मरने से बचानेवाला शंखचूड़? अगर तुमने, जानते हुये भी न बताया, तो मैं तुम्हारा सिर फोड़ दूँगा।"

"जीमूत वाहन प्राणीमात्र पर दया करता था। वह प्राण-दान के लिए, आत्म-बलि अपना कर्तव्य समझता था। शंखचूड़ के लिए नहीं तो वह किसी और के लिए अवश्य अपनी बलि दे देता। वह स्वेच्छा पूर्वक मरता। परन्तु शंखचूड़ का मरना स्वेच्छा के अनुसार नहीं था। वह जबर्दस्ती मारा जाता। अगर वह उस रोज़ बच जाता तो वह मृत्यु से भी बच जाता। यह जानते हुए भी उसने जीमूत वाहन की प्राण-रक्षा की। इसलिए निस्सन्देह शंखचूड़ बड़ा है।"—विक्रमार्क ने कहा।

राजा का मौन-भंग होते ही, वेताल शव के साथ अदृश्य हो गया।

बच्चे देनेवाली कढ़ाई

एक बार गोहा को पकवान बनवाकर खाने की मर्ज़ी हुई। परन्तु घर में बड़ी कढ़ाई न थी। उसने पासवाले घर में से कढ़ाई मँगवायी।

जब कढ़ाई से काम न रहा, तो गोहा ने उसमें एक छोटी सी कढ़ाई रखकर भेज दी। कुछ देर बाद पड़ोसवाले ने आकर पूछा—"हमारे कढ़ाई में छोटी-सी कढ़ाई क्यों रह गयी?" "शायद तुम्हारी कढ़ाई ने बच्चे दिये होंगे।"—गोहा ने कहा। पड़ोसवाला चला गया।

कुछ दिनों बाद, गोहा ने फिर वही कढ़ाई उधार मँगाई। पड़ोसवाले ने उसे दे दी। पर गोहा ने उसे लौटाने का नाम न लिया। काफ़ी दिन इन्तज़ार करने बाद पड़ोसवाले ने गोहा के पास आकर पूछा—"मैं यह नहीं कहता कि कढ़ाई अगर आपके पास रही तो ख़राब हो जायगी; पर उससे कुछ काम आ पड़ा है। क्या दिल्वायेंगे?"

"कौन-सी कढ़ाई?"—गोहा ने पूछा।

"वही, जिसने उस दिन बच्चे दिये थे।"—पड़ोसी ने कहा।

गोहा ने आह भरकर कहा—"अरे भाई! जो चीज़ पैदा होती है, वह मरती भी है। जो अल्लाह से आती है, वह अल्लाह के पास पहुँच जाती है। वह बिचारी तुम्हारी कढ़ाई तब ही मर गई थी।"

चतुर वैद्य

एक राजा के एक लड़की पैदा हुई। वह लड़कियों को नहीं चाहता था। वह इसी फ़िक्र में रहने लगा कि लड़की कब बड़ी होगी, और कब उसकी शादी होगी। फिर उसने यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई वैद्य अपनी लड़की को जल्दी ही बड़ा कर देगा, वह उसको एक लाख रुपये देगा।

राजा की घोषणा सुन एक वैद्य ने राजा के पास जाकर कहा—"महाराज! मैं यह काम कर सकता हूँ, मुझे लाख रुपये दिलवाइये।"

"चिकित्सा के लिये कितना समय लोगे"?—राजा ने पूछा।

"एक महीने तक औषधी का सेवन करने से राजकुमारी बड़ी हो जायेंगी।"—वैद्य ने कहा। राजा मान गया।

कई वर्ष बीत गये। राजा ने चिकित्सक को बुलाकर पूछा—"क्या चिकित्सा हो गई है?"

"राजन्! जड़ी-बूटियां अभी नहीं आयी हैं"—वैद्य ने कहा।

इस बीच में राजकुमारी सयानी हो गई। वैद्य ने कहा—"महाराज! चिकित्सा पूरी हो गई है।" राजा ने प्रसन्न होकर उसको एक लाख रुपये और दिये।

भगवान की सलाह

एक देश में कोई ग़रीब किसान रहा करता था। उसके सात बच्चे थे। कई बार ऐसी नौबत आती कि घर में ढूंढने पर भी अन्न का दाना न मिलता, पीने को माँड़ भी न रहती। किसान में, न काम करने की शक्ति थी, न चोरी वगैरह करने का साहस ही।

एक बार रास्ते के पास खड़ा होकर किसान सोच ही रहा था कि क्या किया जाय कि एक पराक्रमी अघोरी उस तरफ़ से गुज़रा।

"नमस्ते महाराज! कहाँ जा रहे हैं?" किसान ने हाथ जोड़कर पूछा।

"भगवान के पास।" अघोरी ने कहा।

"क्यों?"

"मनुष्य का कर्तव्य जानने के लिए।"

"आपका भला होगा, भगवान से यह भी पूछते आइये कि मुझे क्या करना चाहिये?"—किसान ने बड़े विनय से कहा।

"अच्छा"!—अघोरी अपने रास्ते पर चलता गया। वह अघोरी बहुत धोखेबाज़ था। यह समझकर कि वह भगवान से बातचीत कर सकता था, कई भोले-भाले लोग हमेशा इसकी मदद किया करते थे। उन से रुपया पैसा लेकर, अघोरी चल जाया करता और कुछ दिनों बाद आकर हरेक को कहा करता—"भगवान ने तुम्हें 'यह' करने को कहा है।" लोगों को इस तरह धोखा देकर अघोरी ने काफ़ी पैसा बना लिया था। वह जड़ीदार वस्त्र पहिनता। उसके घोड़े की जीन भी सोने की थी। ठाटबाट की ज़िन्दगी बसर करता था।

किसान अघोरी की प्रतीक्षा करता रहा। उसके आते ही उसने पूछा—"क्या मेरे बारे में भगवान से कुछ बातचीत की थी? भगवान ने मुझे क्या सलाह दी है?"

श्री श्याम प्रसाद जैन

"मैं तेरी बात भगवान से पूछना भूल गया।"—अघोरी ने कहा।

अगले दिन भी किसान, अघोरी की इन्तज़ार करता हुआ सड़क के किनारे बैठ गया। उसके आते ही उसने कहा—"इस बार, बिना भूले, भगवान से मेरी बात पूछना।" अघोरी ने "हाँ" कह दिया, परन्तु वापिस जाते समय जब किसान दिखाई दिया तो उसने कहा—"तेरी बात भूल गया भाई!" अघोरी के मन में शायद यह भावना थी कि इस तरह कहने से वह, उसे दो-चार पैसे पकड़ा देगा।

तीसरी बार फिर किसान ने अघोरी को घोड़े पर आते देखा।

"कम से कम आज तो भगवान से मेरे बारे में कहना। आपका भला होगा। इस ग़रीबी के कारण मरा जा रहा हूँ।" किसान ने अघोरी की अनुनय-विनय की।

"इसमें क्या बड़ी बात है। जरूर पूछूँगा।"—अघोरी ने कहा।

"नहीं, आप फिर भूल जाएँगे। आप अपने सोने की रिकाबी, मेरे पास रखवा कर जाइये। अगर यह रिकाबी मेरे पास रख दी, तो जन्म-भर मुझे न भूलेंगे।"—किसान ने कहा।

अगर रिकाबी देने से मना करता है, तो अघोरी को डर लगा कि किसान कहीं उसे लात न जमा दे। वह पराक्रमी तो समझा जाता था; पर वस्तुत: वह उतना पराक्रमी था नहीं। इसलिए वह कुछ कर न सका। लाचार हो उसने जीन से एक रिकाबी निकालकर उसको दे दी।

उसकी वापसी की प्रतीक्षा करता करता किसान सड़क पर ही बैठा रहा। अघोरी के आते ही उसने बड़ी जल्दी में पूछा—"भगवान ने मेरे बारे में क्या बताया है?"

"अगर तूने मेरी रिकाबी न ली होती, तो मैं फिर तेरी बात भूल जाता। सच की बातें पूछकर, मैं घोड़े पर चढ़ने वाला ही था कि रिकाबी न पाकर, तेरी बात याद आ गई, और फिर वापिस जाकर तेरी बात पूछकर आया।"— अघोरी ने कहा।

"भगवान ने क्या मुझे इसी तरह जीने के लिए कहा है?"—किसान ने पूछा।

"लोगों की आँखों में धूल झोंककर भगवान ने तुझे जीने के लिए कहा है। उससे अच्छा और कोई तरीका नहीं है।"—अघोरी ने कहा।

"आपने यह मदद कर, मेरा बड़ा उपकार किया है। नमस्ते महाराज!" कहता कहता किसान अपने घर की तरफ़ वापिस जाने के लिये मुड़ा।

"ठहर! कहाँ जा रहा है? मेरी सोने की रिकाबी मुझे देते जा।"— अघोरी ने उससे कहा।

"कौन-सी रिकाबी?"—किसान ने पीछे मुड़कर आश्चर्य से पूछा।

"वही, जो तुम ने मुझसे ली थी।" अघोरी ने किसान को रोकते हुए कहा।

"मैंने आपकी रिकाबी कब ली थी? मैंने तो आपको पहिले कभी देखा भी नहीं है।"—किसान ने कहा।

अघोरी हैरान रह गया। उसे न सूझा कि क्या किया जाय? किसान को समझाया-बुझाया, पर कोई फ़ायदा न हुआ। अगर लड़ता-झगड़ता तो उसे डर था कि कहीं वह उसको न मार बैठे। "अगर यह रिकाबी मेरे पास रही तो आप जन्म-भर नहीं भूलेंगे" वाली किसान की उस दिन की बात कतई सही थी। लाचार होकर अघोरी अपने रास्ते पर कहीं चला गया।

किसान, जो कोई दीखता, उसको सोने की रिकाबी बेचने की कोशिश करता। एक दिन एक ज़मीन्दार ने, किसान से रिकाबी के बारे में भाव-तोल किया।

"कितने में बेचोगे?"—ज़मीन्दार ने पूछा।

"पन्द्रह सौ मुहरों में दे दूँगा"—किसान ने कहा।

"क्या इस का दाम पन्द्रह सौ मुहरें हैं?"

"महाराज! यह रिकाबी सोने की बनी है! आप इसे समझते क्या हैं!"

ज़मीन्दार ने जब अपना बटुआ टटोला तो एक हज़ार मोहरें ही थीं।

"यह लो, हज़ार मोहरें। रिकाबी दे दो। बाकी पाँच सौ मुहरें घर पहुँचकर भिजवा दूँगा।"—ज़मीन्दार ने कहा।

"हज़ार मुहरें दे दीजिए, लिए लेता हूँ। परन्तु जब तक मेरे हाथ में पन्द्रह सौ मुहरें नहीं आ जातीं, तब तक रिकाबी न दूँगा।"—किसान ने कहा।

ज़मीन्दार हज़ार मोहरें देकर घर चला गया। तुरन्त उसने नौकर के हाथ पाँच सौ मोहरें देकर किसान के पास भेजीं।"

नौकर ने किसान के झोंपड़े में आकर कहा—"हुजूर ने आपको पैसे देने के लिए कहा है। ले लीजिए।"

"देने के लिए कहा है तो दे दे।"—किसान ने कहा।

नौकर ने पाँच सौ मुहरें किसान के हाथ में रखकर कहा—"अब सोने की रिकाबी दे दीजिए। मुझे जाना है।"

"कौन-सी रिकाबी?"—किसान ने पूछा।

"वही रिकाबी, जो हमारे मालिक ने पाँच सौ मुहरें देकर आपके पास से खरीदी है।"—नौकर ने कहा।

"मेरे पास सोने की रिकाबी कहाँ है!"—किसान ने पूछा।

"नहीं है तो पैसे क्यों लिए थे? वापिस दे दो।"—नौकर ने कहा।

"पैसा!" किसान ने पूछा।

"मैंने अभी अभी तो तुम्हें पाँच सौ मुहरें दी थीं।"—नौकर ने कहा।

"मैंने तो अपनी आँखों से पाँच सौ कौड़ियाँ भी नहीं देखी हैं।"—किसान ने खीझते हुए कहा।

नौकर ने वापिस जाकर किसान की झूठी बातों के बारे में ज़मीन्दार से कहा।
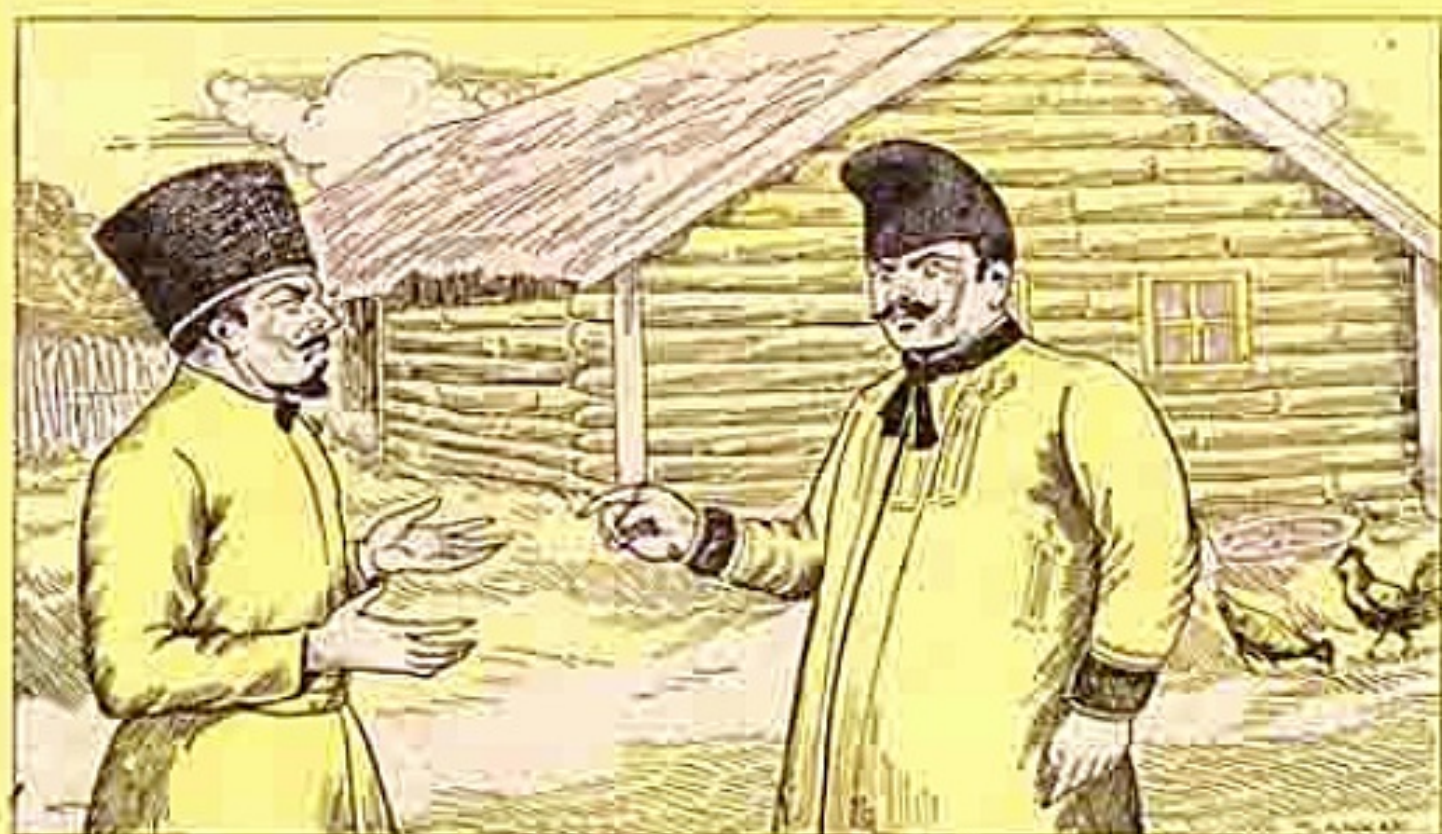
किसान के घर जाकर ज़मीन्दार ने पूछा— "पैसे लेकर सोने की रिकाबी देने से इनकार करता है, दग़ाबाज़ कहीं का?"

"मैं ग़रीब हूँ। खाने को भी नसीब नहीं। मेरे पास भला सोने की रिकाबी कहाँ से आयेगी?"—किसान ने कहा।

"चल अदालत में।"—ज़मीन्दार ने कहा।

"इसमें क्या बात है! पर मैं ग़रीब हूँ। खाने-पीने को भी नहीं। मेरे कपड़े ही देखिये। आप सामन्त हैं। आप मेरे साथ अदालत कैसे चल सकेंगे? अच्छे कपड़े मिल जायें, तो मैं आपके साथ आ सकता हूँ।"—किसान ने कहा।

"कपड़ों में क्या रखा है! मैं दिला दूँगा। चलो।"—ज़मीन्दार ने कहा।

ज़मीन्दार के दिये हुए अच्छे कपड़े पहिनकर किसान उसके साथ अदालत गया।

"सोने के रिकाबी बेचने का वायदा कर, मुझ से पैसा ले, अब यह रिकाबी देने से मुकर रहा है।"—ज़मीन्दार ने अदालत में फ़रियाद की।

"मैं ग़रीब हूँ। मैं बच्चों को माँड़ भी खाने को दे नहीं पाता हूँ, भला मेरे पास सोने की रिकाबी कहाँ से आयेगी? ये बड़े आदमी मुझ से क्या चाहते हैं, मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। शायद थोड़ी देर बाद, मेरे पहिने हुए कपड़े भी माँगने लग जायें।"—किसान ने कहा।

"क्या ये कपड़े मेरे नहीं हैं?"—ज़मीन्दार ने आश्चर्य से पूछा।

"देखा आपने? यह क्या इन्साफ़ है?"—किसान ने न्यायाधिकारी से कहा।

न्यायाधिकारी ने ज़मीन्दार की शिकायत रद्द कर दी। उसने दोनों को भेज दिया। किसान, भगवान की सलाह का पालन करता हुआ आराम से जीने लगा।

छेड़ना नहीं, वरना....

श्री. गो. अभ्यंकर.
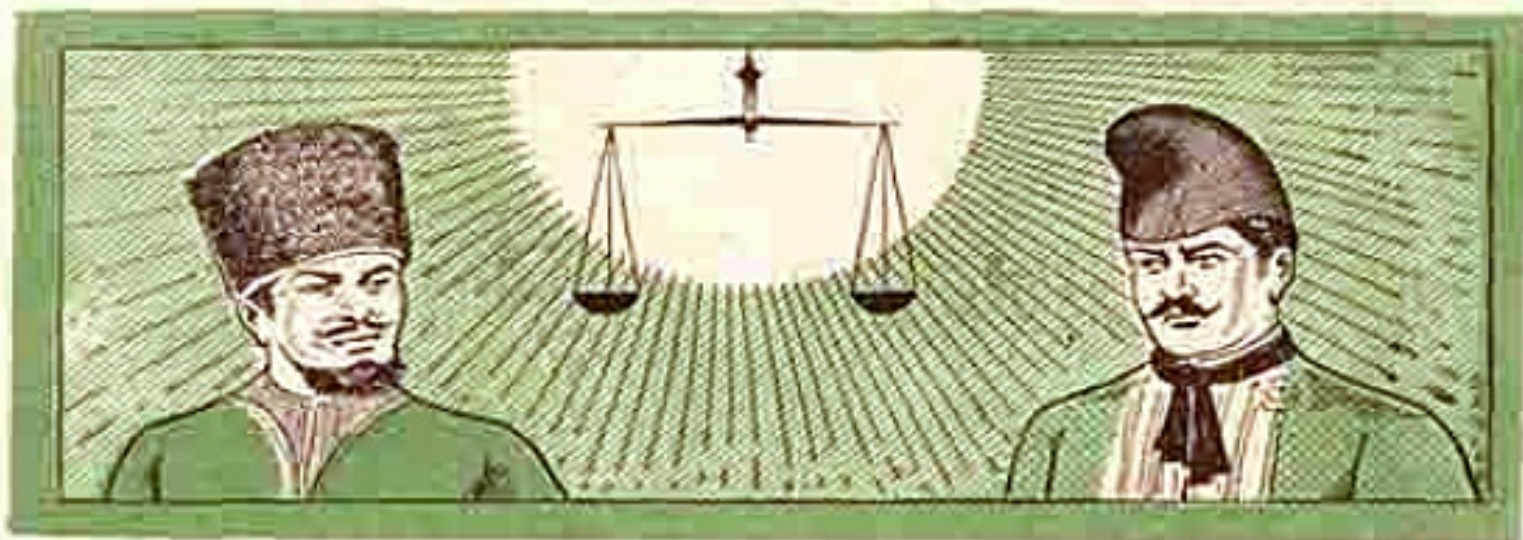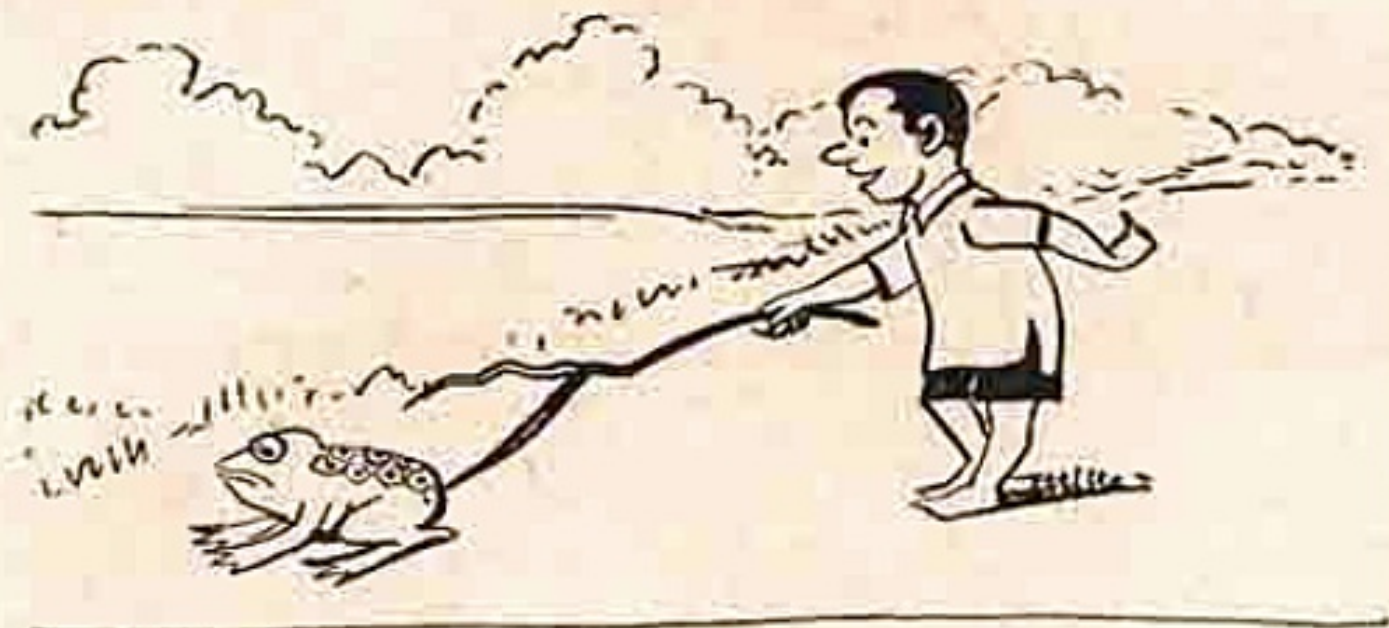
गरीब ब्राह्मण

एक बार राजा भोज, घोड़े पर सवार हो, शिकार खेलने जा रहा था। जंगल के रास्ते में एक नाला पड़ता था। सिर पर लकड़ियों का गट्ठर रख, एक ब्राह्मण उनको नाला पार करता नज़र आया। वह ब्राह्मण जंगल से लकड़ियाँ काटकर ला रहा था। राजा और उस ब्राह्मण में इस प्रकार का संभाषण हुआ :

भोज—"कियन्मात्रं जलं, विप्र?"
(हे ब्राह्मण! पानी कितना गहरा है?)

ब्राह्मण—आजानुदघ्नं नराधिप।
(राजा! घुटनों तक है।)

भोज—ईदृशी किमवस्थाते?
(तुम्हारी यह हालत क्या है?)

ब्राह्मण—नहि सर्वे भवादृशाः
(क्या सब आपके समान हो सकते हैं?)

राजा भोज को ब्राह्मण का अन्तिम उत्तर बहुत पसन्द आया और उससे न रहा गया। उसने कहा—"तुम तुरन्त कोशाध्यक्ष के पास जाओ, और मेरा नाम लेकर, एक लाख रुपये ले लो"। यह कह राजा अपने रास्ते पर शिकार खेलने चला गया।

यह सुन ब्राह्मण बहुत सन्तुष्ट हुआ, और लकड़ियों का गट्ठर वहीं फेंक, वह सीधा राजा के महल में गया। कोशाध्यक्ष का दर्शन कर उसने निवेदन किया—"राजा भोज ने आपसे कहकर लाख रुपये लेने के लिये कहा है। वे अभी अभी उधर से शिकार खेलने गये हैं।"

ब्राह्मण का हुलिया देखकर कोशाध्यक्ष को विश्वास न हुआ। उसने कहा—"बिना राजा की आज्ञा के कोशागार से एक रुपया भी नहीं दिया जा सकता है, जाओ घर जाओ।" राजा भोज के शिकार से

श्री उमा शंकर झा

वापिस आने पर ब्राह्मण फिर एक बार कोशाध्यक्ष के पास गया।

"राजा ने तो मुझसे इस विषय में कुछ भी नहीं कहा है। रुपया कैसे दिया जा सकता है?"—कोशाध्यक्ष ने पूछा।

"क्या आपसे उनकी इस सम्बन्ध में बातचीत नहीं हुई?"—ब्राह्मण ने पूछा।

"अगर उन्होंने देने का वायदा किया होता तो क्या वे मुझसे न कहते? चाहते हो तो तुम स्वयं जाकर पूछ लो।"—कोशाध्यक्ष ने खीझकर कहा।

ब्राह्मण को बड़ा गुस्सा आया। वह राजा भोज के दर्शन करने गया और उनके समक्ष उसने यह श्लोक सुनाया :

राजन् कनकधाराभिः त्वयि सर्वत्र वर्षति
अभाग्यच्छत्र सञ्छन्ने मयि नायान्ति बिंदवः
त्वयि वर्षति पर्जन्ये सर्वे पल्लविता द्रुमाः
अस्माकं मर्क वृक्षाणां पूर्व पत्रेषु संशयः

("हे राजन्! आप यद्यपि सर्वत्र सोने की वर्षा करा रहे हैं, परन्तु छाते के के नीचे खड़ा मैं ही एक ऐसा अभागा हूँ कि मुझ तक एक बूंद भी नहीं आती। आपकी बरसायी हुई वर्षा से सब पेड़ों पर नये नये पत्ते आ गये हैं, पर मुझ जैसे धतूरे के वृक्ष के सूखे पत्ते भी जाते मालूम होते हैं।")

राजा भोज धन-धान्य देंगे, यह सोच जंगल में लकड़ियों के काटने का काम भी, ब्राह्मण ने छोड़ दिया था। राजा भोज को उसकी बुरी हालत मालूम हो गई। उन्होंने तुरन्त कोशाध्यक्ष को बुलवाकर आज्ञा दी—"इस ब्राह्मण को फौरन् तीन लाख रुपये, दस हाथी, पारितोषक के रूप में देकर सादर भेज दो।" ब्राह्मण यह सुन बहुत ही प्रसन्न हुआ और राजा भोज की प्रशंसा करता करता घर चला गया। वह सुख से रहने लगा।"

बुद्धु बहिन

किसी गाँव में एक किसान रहा करता था। वह हमेशा लक्ष्मी की पूजा करता। इसलिए उस पर लक्ष्मी किसी प्रकार की कठिनाई न आने देती।

एक बार, लक्ष्मी देवी अपनी बड़ी बहिन, ज्येष्ठा देवी के साथ, उस किसान के गाँव के पास गई। रास्ते में लक्ष्मी ने अपनी बहिन को एक खेत दिखाकर कहा—"बहिन! यह खेत देखा, कैसी अच्छी फ़सल लग रही है? यह खेत एक किसान का है। वह बहुत अच्छा भक्त है। उसके हाथ में मिट्टी भी सोना हो जाती है।"

ज्येष्ठा देवी ने नाक भौं चढ़ाकर खेत की तरफ़ ग़ौर से देखा। फ़सल पर उसकी नज़र लग गई। "एक सप्ताह में, मैं भयंकर वर्षा कर सारी फ़सल ख़राब कर दूँगी। तू तो ऐसी बात कर रही है, जैसे किसान ने इस फ़सल से अभी पैसे बना लिये हों।"—बड़ी बहिन ने कहा।

रात को, लक्ष्मी देवी ने किसान के घर जाकर उससे कहा—"अरे भाई! अगर तू अपनी ख़ैरियत चाहता है तो कल ही जाकर सेठ बनवारीलाल को अभी अपनी सारी फ़सल बेच दे"। किसान ने उसकी सलाह के अनुसार, खड़ी फ़सल सेठ को बेच दी।

सप्ताह समाप्त भी न हुआ था कि ज़ोर से वर्षा हुई। लगभग सभी को नुक़सान हुआ पर किसान का तो सारा खेत ही ख़राब हो गया।

फ़िर एक बार दोनों बहिनें उस तरफ़ आईं। "देखा, किसान की क्या हालत हुई है!"—बड़ी बहिन ने पूछा।

"लगता है कि किसान को तो कोई नुक़सान नहीं हुआ है। क्योंकि उसने

कुमारी विनीता माथुर

अपनी फ़सल पहिले ही सेठ को बेच दी थी।"—लक्ष्मी ने कहा।

"ओहो, ऐसी बात है! यूँ ही, बिचारे सेठ का फ़ालतू नुक़सान होगा। और मैं ऐसा करूँगी कि खेत न ख़राब हो और पूरी फ़सल पैदा हो।"—बड़ी बहिन ने कहा।

लक्ष्मी ने फ़िर किसान के पास जाकर कहा—"अरे भाई, सेठ से अपनी फ़सल फ़िर ख़रीद ले। बस माँगने की देर है वह तुरन्त देने को मान जायेगा।"

किसान ने सेठ के पास जाकर कहा—"बाबू! मेरी फ़सल ख़रीदकर आपको बड़ा नुक़सान हुआ है। नुक़सान भी हम आधा आधा बाँट लें। फ़सल मुझे दे दीजिये, जो पैसे आपको मुझे देने थे, मैं छोड़े देता हूँ।"

सेठ मान गया और नया दस्तावेज़ लिखकर उसने किसान को दे दिया।

किसान का खेत फिर हरा-भरा हो गया। एक दाना भी बेकार न गया। मामूली फ़सल की अपेक्षा, अच्छी फ़सल हुई।

दोनों बहिनें उस तरफ़ आईं। "देखा, मैंने सेठ को नुक़सान होने नहीं दिया।"—बड़ी बहिन ने कहा। "फ़सल को किसान ने वापिस ख़रीद लिया था। फ़ायदा तो किसान को हुआ, और नुक़सान सेठ को।"—लक्ष्मी ने कहा।

बड़ी बहिन ने दाँत कटकटाते हुए कहा—"धूर्त! जो कुछ मैं सोचती हूँ, वह उससे बचने के लिये कुछ कर ही लेता है। उसे एक ढेर से दो बोरे धान भी न मिलेगा।"

लक्ष्मी ने तीसरी बार किसान के पास जाकर कहा—"भाई! जब तू धान काटे तो उसके कई ढेर बनाना और अलग अलग खलिहान में धान निकालना।"

किसान ने उसी प्रकार, धान के छोटे छोटे ढेर लगाये और अलग अलग खलिहान

में उसे पिसवाया। हर ढेर से दो बोरा धान निकला और धान इतना ज्यादह हो गया कि उसको जमा करने के लिए किसान को नई कोठरियाँ बनवानी पड़ीं।

थोड़े दिनों बाद जब दोनों बहिनें उस तरफ़ जा रही थीं, तो बड़ी बहिन ने कोठरियों को देखकर पूछा—"ये क्या हैं!"

"तेरे कहने का ही फल है। तूने ही तो कहा था कि एक एक ढेर से दो दो बोरे धान निकले। अब धान को रखने की जगह न थी। इस लिए उसको ये कोठरियाँ बनवानी पड़ीं।"—लक्ष्मी ने कहा।

तब बड़ी बहिन को पता लगा कि यह सब उसकी बहिन की ही करामात थी। "देखना! इस किसान का क्या करता हूँ!"—बड़ी बहिन ने कहा।

"क्यों, क्या करेगी!"—लक्ष्मी ने पूछा।

"मैं अब तुझे कुछ न बताऊँगी।"—बड़ी बहिन ने कहा। लक्ष्मी ने उस रात को किसान को एक तरीका बताया। अगले दिन, जब दोनों बहिनें उसके घर के पास गईं तो वहाँ बाजे-नगाड़े बज रहे थे।

"यह क्या है! देखें"—लक्ष्मी ने कहा।

दोनों मनुष्य का वेष धारण कर अन्दर गयीं। किसान किसी पूजा में लगा था।

"बेटा! किसकी पूजा कर रहे हो!"—लक्ष्मी ने उससे पूछा।

"ज्येष्ठा देवी की पूजा करने जा रहा हूँ।"—किसान ने कहा।

बाहर आने पर, लक्ष्मी ने अपनी बहिन से कहा—"बहिन, तू तो समझ रही थी कि मैंने कुछ किया है। वह पहिले ही जानता है कि यह सब तेरी ही दया है।"

"अच्छा! तो वह बहुत योग्य आदमी है।"—बड़ी बहिन ने कहा।

कल्पना

एक चितेरे ने एक चित्र बनाया। चित्र में एक शिकारी ने अकेले एक शेर को मार दिया था। इस चित्र को देखने के लिये लोग जमा हो गये। बड़े शेर को मारनेवाले शिकारी की बहादुरी की वे प्रशंसा करने लगे।

इस बीच में वहाँ एक शेर आया। सब डर के कारण काठ हो गये। शेर ने चित्र देखा और लोगों की ओर मुड़कर कहा—"मित्रो! इस चित्र में आपने विजय पाई है, इसमें कोई सन्देह नहीं है; परन्तु यह चित्रकार की कल्पना है। अगर हम शेर भी चित्र बनाना सीख जायें तो यह चित्र और वास्तविक होगा।"

जो लोग चित्र देखकर प्रसन्न हो रहे थे, यह बात सुनते ही, शर्मिन्दा होकर चले गये।

सच बोलनेवाला नीच

एक गाँव में कोई ब्राह्मण रहा करता था। उसे वेद वग़ैरह न आते थे। परन्तु पूजा-पाठ का काम करने के लिए उसे ज़रूर दो-चार मन्त्र आते थे। पर क्योंकि वह बहुत नीच था, इसलिए उसे कोई पूजा—पुरोहितार्थ के लिए भी न बुलाता। सब उसे दूर ही रखते। जब भूखों मरने की नौबत आई तो वह जगह जगह घूमने लगा।

किसी गाँव के पास, ब्राह्मण को एक शिवालय दिखाई दिया। उस मन्दिर में, पूजा-पाठ न होता था। ब्राह्मण ने उस मन्दिर में धरना जमा दिया और वह उस मन्दिर का पुजारी बन गया। वह गाँव में जाकर झूठी झूठी बातें बनाने लगा कि भगवान उसको स्वप्न में दिखाई दिये थे और उस मन्दिर में पूजा करने के लिए उससे कहा था। इसीलिए वह इतनी दूर से आया है—आदि आदि।

यह जानकर कि शिवालय में पूजा-पाठ हो रहा है, गाँववाले आकर, तरह तरह के नैवेद्य चढ़ाने लगे। परन्तु पुजारी को उसकी इच्छानुसार पैसे न मिले। ईश्वर की महिमा दिखाने के लिए, उसने इधर-उधर के प्रयत्न किये, पर कोई फ़ायदा न हुआ। खाने-पीने को मिल जाता था, पर वह एक दमड़ी भी न जमा पाता था। उसे कोई उपाय न सूझा।

आख़िर वह ऊब गया। एक दिन, रात को, शिव-लिंग को लात मार, उस दिन का प्रसाद इकट्ठा कर, बोरिया-बिस्तर बाँधकर, वह शिवालय छोड़कर कोई दूसरा गाँव चला गया।

सवेरे सवेरे, पुजारी को एक बूढ़ा दिखाई दिया। दोनों की कोई मँज़िल न थी। बूढ़े ने कहा—"मुझे भी साथ ले

श्री अमरजीत सिंह

चलो। उम्र हो गई है। मेरी कोई पूछ-ताछ करने वाला भी नहीं है। अकेला सफ़र कर नहीं पाता हूँ।" उसकी बातें सुनकर पुजारी मान गया।

दोपहर हो गई। दोनों राहगीर, एक पेड़ के नीचे खाने के लिए बैठे। "मेरे पास काफ़ी चूड़ा है, पहिले वह खा लें। अगर पेट न भरा तो जो तुम्हारे पास है, उसे खायेंगे।"—बूढ़े ने कहा। पुजारी ने इस विषय में कोई आपत्ति न की।

पर जब खाने बैठे, तो दोनों मिलकर चूड़ा न खा सके। बूढ़े ने तो इतना खा लिया कि वह पेड़ के नीचे आराम से सोने लगा। यह मौका देख ब्राह्मण ने बूढ़े की चूड़े की पोटली खोली, और बचे हुए चूड़े को आराम से खा लिया।

बूढ़े ने उठकर पोटली टटोली। जब उसे वह कहीं न दिखाई दी तो उसने पुजारी से पूछा—"मेरी चूड़े की पोटली क्या हुई? कहीं तुमने खा तो नहीं लिया है?"

"नहीं तो, मैंने तो उसे देखा तक नहीं है"—पुजारी ने कहा।

"ख़ैर, जाने दो।"—बूढ़े ने कहा। फिर वे वहाँ से किसी और देश में गये। उस देश की राजकुमारी बहुत सख़्त बीमार थी। राजा ने घोषणा कर रखी थी कि जो कोई उसकी बीमारी ठीक कर देगा, उसको खूब ईनाम मिलेगा।"
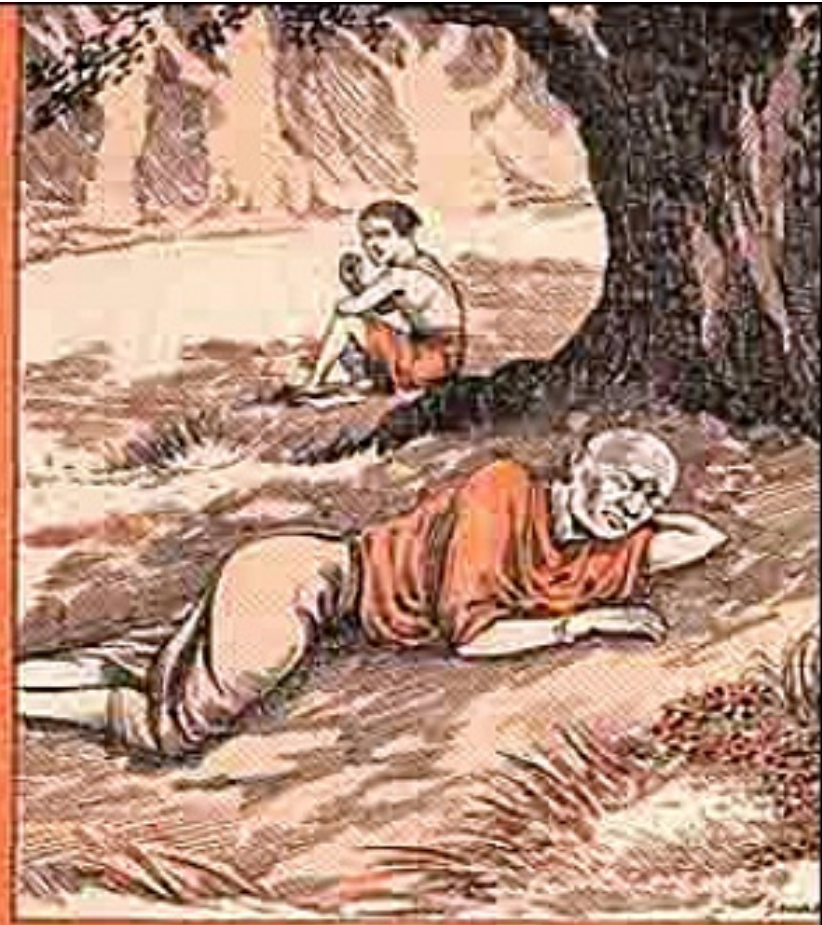
यह जानकर बूढ़े ने पुजारी से कहा—"इस राजकुमारी की बीमारी हम आसानी से ठीक कर सकते हैं। आओ, उसको मृत्यु के मुँह से बचायें।"

"अगर हमने यह काम किया तो राजा हमें ढेर भर सोना देगा।"—पुजारी ने ललचाते हुए कहा। दोनों मिलकर राजमहल में गये। राजकुमारी आख़िरी साँसें ले रही थी।

"महाराज! अगर आप चिकित्सा कराते कराते निराश हो गये हो तो आप अपनी लड़की को हमें सौंप दीजिये। हम उनकी चिकित्सा करेंगे। परन्तु हमारी चिकित्सा आप नहीं देख सकेंगे!"—बूढ़े ने राजा से कहा।

और कोई रास्ता न था, इसलिए राजा उसको अपनी लड़की सौंपने को मान गया। चिकित्सा के लिए एक घर दे दिया गया। बूढ़े ने यज्ञ के लिए एक गढ़ा खुदवाया। एक बड़े बर्तन में दूध मँगवाया। सिवाय पुजारी के उसने सब को बाहर भेज दिया। किवाड़ों पर चटखनियाँ लगा दी गयी थीं।

पुजारी उत्कंठा से यह देखने लगा कि बूढ़ा क्या चिकित्सा करता है। बूढ़े ने राजकुमारी को उठाकर यज्ञ-कुंड में डाल दिया। थोड़ी देर में वह भस्म हो गई।

"वाह! अब मैं इसको ज़िन्दा करूँगा।" कहते हुए, बूढ़े ने राजकुमारी की हड्डियाँ बाहर निकालीं और उन्हें दूध के बड़े बर्तन में डाल दीं। तुरन्त, राजकुमारी स्वस्थ हो उस बर्तन में से निकल आयी, मानों सोकर उठी हो।

राजा बड़ा आनन्दित हुआ। उसने बूढ़े और पुजारी की खूब मान-मर्यादा की। उन्हें भोजन खिलाकर, उसने उनके सामने सोने की मोहरों को रखते हुए कहा—"अश्वनी कुमारों की तरह आकर आपने मेरी लड़की की रक्षा की है। चाहे कितना भी दूँ, मैं आपका ऋण नहीं चुका सकता। आप इस सोने में से जितना चाहें, आप ले लें। मुझे अनुगृहीत कीजिये।"

"मैं बूढ़ा हूँ। सोने को ढो नहीं पाऊँगा।"—कहते हुए बूढ़े ने केवल हथेली भर मुहरें ले लीं। परन्तु पुजारी ने अपना तौलिया भर लिया और जितनी मोहरें वह ढो सकता था, उसने उठा लीं।

यह देख, राजमहल के नौकरों ने सोचा कि शायद पुजारी ने ही वस्तुतः राजकुमारी को ठीक किया है। उनमें से एक ने पुजारी के पास जाकर धीमे से कहा—"यहाँ से पाँच कोस दूर एक और राजा है। उनकी पुत्री भी बहुत दिनों से रोगी है। आपको हमारी राजकुमारी की बीमारी दूर करने में अधिक समय ही न लगा। ऐसी हालत में उनकी बीमारी ठीक करने में आपको देरी क्या लगेगी!"

पुजारी ने एक बार तो चिकित्सा करने की पद्धति देख ही ली थी! उसको अधिक रुपया-पैसा बनाने का लालच हुआ। कहीं ऐसा न हो कि बूढ़े को ईनाम मिले, इसलिए उसने इस विषय में उससे कहा तक नहीं। वे उस राज्य की ओर चल पड़े।
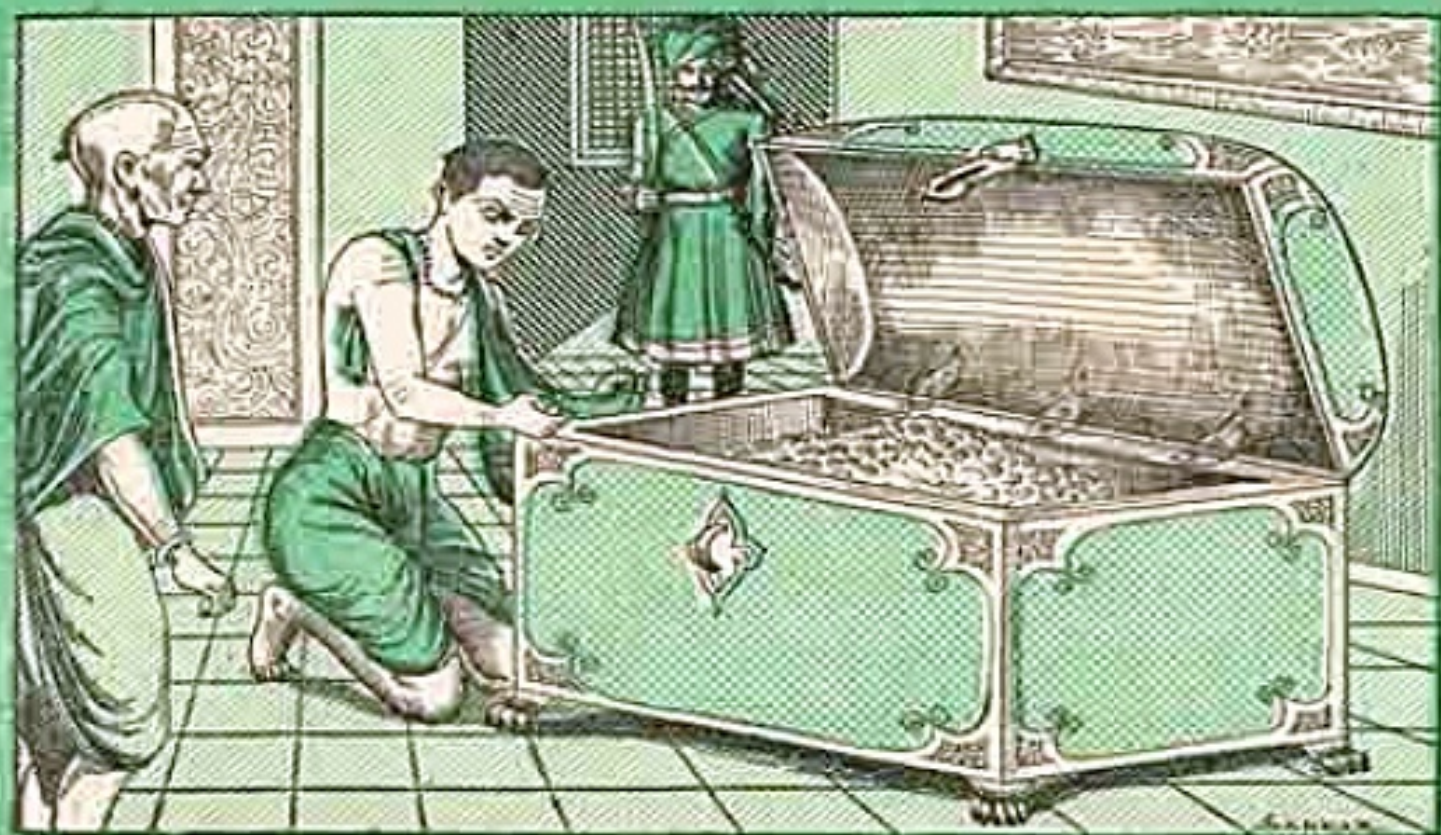
यह बात सच थी कि उस देश की राजकुमारी बहुत दिनों से रोगी थी। परन्तु क्योंकि धन के लालच से, इधर-उधर के वैद्य ऊँटपटांग चिकित्सा कर राजकुमारी को और रोगी बना गये थे, इसलिए राजा ने यह नियम बना दिया था कि जो कोई वैद्य राजकुमारी की चिकित्सा न कर पायेगा, उसको प्राण-दण्ड दिया जायेगा।

परन्तु पुजारी इस नियम के कारण घबराया नहीं! क्योंकि उसको बूढ़े की चिकित्सा पर पूरा विश्वास था। इसलिए बूढ़े को सराय में छोड़कर वह स्वयं राजमहल गया। उसने राजकुमारी की चिकित्सा करने का वचन दिया। प्राण-दण्ड वाले नियम को भी वह मान गया। उसने यह भी बताया कि पहिले उसने एक राजकुमारी की प्राण-रक्षा की थी। उस राजा के दिये हुए सोने को दिखाकर इस राजा को अपनी योग्यता पर विश्वास कराया। एक अलग घर लेकर, उसमें उसने एक यज्ञ-कुण्ड तैयार करवाया। एक बड़े बर्तन में दूध भी रखा गया। राजकुमारी को जीते जी यज्ञ-कुण्ड में डालकर, उसको भस्म कर दिया। उसकी हड्डियाँ उठाकर उसने दूध के बर्तन में डालीं। पर कुछ न हुआ! राजकुमारी जीवित न हुई।

पुजारी पथरा सा गया। उसे कुछ न सूझा। उसने दो तीन हड्डियाँ और उठाकर दूध में डालीं। वे भी दूध में तैर आईं। पुजारी के होश-हवाश उड़ गये। उसे न

मालूम हुआ कि चिकित्सा में क्या कमी रह गई थी। उसने वही चिकित्सा की थी, जो बूढ़े ने पहली राजकुमारी के लिए की थी। पर परिणाम वह न हुआ।

राज-सैनिकों ने आकर पुजारी को पकड़ लिया। राजा के गुस्से का तो ठिकाना ही न था। उसने हुक्म दिया कि पुजारी को फाँसी पर चढ़ा दिया जाये।

पुजारी ने राजा के पैरों पर गिरकर कहा—"सराय में मेरा एक बूढ़ा शिष्य है। मुझे थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिये। मैं उससे बातचीत करके आ जाऊँगा। मुझे अब भी आशा है कि आपकी लड़की फिर जीवित हो उठेगी।"

"अब तुम्हें एक क्षण भी नहीं छोड़ा जा सकता। भाग जाने की सोच रहे हो क्या? इस धूर्त को तुरन्त वध-स्थल ले जाओ।"—राजा ने अपने सैनिकों से कहा।

जब पुजारी फाँसी के तख़्त पर पहुँचा तो वहाँ बूढ़ा हाज़िर था।

"अरे! मरने जा रहे हो! कम से कम अब तो बताओ कि मेरा चूड़ा किसने चुराया?"—बूढ़े ने पूछा। "मुझे नहीं मालूम।"—पुजारी ने कहा। फिर उसे जल्लादों ने एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ाया।

"अब भी बता दो! मेरा चूड़ा किसने चुराया?—बूढ़े ने पूछा।

"तुम्हारी कसम! मैं कुछ नहीं जानता।"—पुजारी ने कहा। जल्लादों ने उसको एक और सीढ़ी चढ़ाया। बूढ़े ने फिर वही प्रश्न किया। पुजारी ने भी वही उत्तर दिया। जल्लादों ने उसको तीसरी सीढ़ी पर चढ़ाकर, उसके गले में फाँसी की रस्सी लगा दी। इस बीच में राजा भी वहाँ आ पहुँचा।

"थोड़ा ठहरिये! क्या मैं जान सकता हूँ कि इसको क्यों फाँसी पर चढ़ाया जा रहा है?"—बूढ़े ने राजा से पूछा।

"मेरी लड़की का इलाज तो अलग, इस दुष्ट ने उसे जीते जी ही मार दिया है।"—राजा ने उससे कहा।

"मैं उनको जिला दूँगा। आप फाँसी रुकवा दीजिये।"— बूढ़े ने कहा।

"हो सकता है, यह भी धोखा हो।"—राजा ने कहा।

"मेरे साथ आप अपने सैनिक भेजिये। अगर मैं आपकी लड़की को न जिला दूँ, तो मुझे भी फाँसी पर चढ़ा दीजिये।"—बूढ़े ने कहा।

अपने वचन के अनुसार बूढ़े ने राजकुमारी की कुछ हड्डियाँ लेकर दूध में डालकर, उसको पुनर्जीवित कर दिया। उसका पुराना रोग भी ठीक हो गया।

राजा बहुत आनन्दित हुआ। उसने पुजारी की सज़ा रद्द कर दी और प्राणों की रक्षा करनेवाले बूढ़े के लिए, एक लकड़ी के सन्दूक को सोने से भर सराय में भेज दी, जहाँ बूढ़ा ठहरा हुआ था।

"हम अब तक सुख-दुख में साथ साथ रहे हैं। मुझे इस सोने में भी आधा हिस्सा मिलना चाहिये।"—पुजारी ने बूढ़े से कहा।

बूढ़ा मान गया और वह सोने के तीन हिस्से बनाने लगा।

"तीसरा हिस्सा उसका है, जिसने चोरी से मेरा चूड़ा खा लिया था।"—बूढ़े ने जवाब दिया।

"चूड़ा मैंने ही तो खाया था!"—पुजारी ने खुशी खुशी कहा।

बूढ़े ने गुस्से में, सिर उठाकर उसकी तरफ़ देखते हुए कहा—"तू परम नीच है। मेरा पुजारी बनकर, तूने मुझे भी अपवित्र कर दिया है।" यह कहते कहते वह बूढ़ा अदृश्य हो गया।

ग्रह : शनि

शनि सूर्य से ९० करोड़ मील दूरी पर है। इस पर पड़नेवाला सूर्य का प्रकाश, भूमि पर पड़नेवाले प्रकाश का सौवाँ हिस्सा ही होता है। यह ६ मील प्रति सेकण्ड के हिसाब से सूर्य के चारों ओर घूमती हुई १०,७६० रोज़ में घूमकर शनि तक पहुँचता है। यह शनि का वर्ष है—हमारे वर्ष से यह ३० गुना बड़ा है।

★ गुरु की तरह शनि भी बहुत बड़ा है। उसका व्यास ७६,४७० मील है। यह ग्रह १० घंटे १२ मिनट में स्वपरिक्रमा करता है। यह उसके लिये एक रोज़ है—यानी हमारे आधे रोज़ से भी कम है।

★ इस तरह जो आदमी भूमि पर ९० वर्ष जीता है, वह शनि में ३ वर्ष ही जीवित रहेगा। पर वह व्यक्ति उन तीन वर्षों में करीब ८० रोज़ बिता देता है। परन्तु यह अनुमान मात्र ही है। क्योंकि शनि में प्राणी के जीवित रहने की गुंजाइश नहीं है। उस ग्रह में बड़ी तीक्ष्ण सरदी होती होगी। इसके अतिरिक्त उस ग्रह का वातावरण प्राणियों के अनुकूल भी नहीं है।

★ शनि के चारों ओर घूमनेवालों को हम नहीं देख सकते; केवल टेलिस्कोप की सहायता से ही उनका परिवीक्षण किया जा सकता है। जब महान वैज्ञानिक गेलीलियो ने उनको सबसे पहिले देखा था, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ था। अब भी जो वैज्ञानिक उनको देखते हैं, तो आश्चर्य होता है।

★ शनि ग्रह के चारों ओर तीन हल्के से घेरे हैं। उनमें जो ग्रह के निकटस्थ है, वह उतना प्रकाशमान नहीं है, वह क्रेप जैसा लगता है। दूसरा बहुत प्रकाशमय होता है। उसके चारों ओर का घेरा उतना तेजोमय नहीं है।

★ इन घेरों के वातावरण में छोटे छोटे कण मिले हुए होते हैं। ये करोड़ों की संख्या में हैं। इन घेरों की परछाईं शनि पर पड़ती है।

आदिम जन्तु

भयंकर सरीसृपों में, भूमि पर रहनेवालों को "डिनज़ार" कहते हैं। पिछले महीने हमने तीन तरह के "डिनज़ार" के बारे में बताया था।

"डिनज़ार" में सब से बड़ा "डिप्लोड्कस" है। यह "ब्रान्टज़ारस" से ही नहीं, अपितु उस से पहिले, और उसके बाद पैदा हुए जन्तुओं में सबसे बड़ा है। "डिप्लोड्कस" की लम्बाई ९० फीट थी। अगर वह आज ज़िन्दा होता तो किसी तिमंज़िले मकान की छत तक आसानी से पहुँच सकता था।

इन सरीसृपों में और भी कई भयंकर जन्तु थे। "ब्राखीयोज़ारस" नामक जन्तु का भार ५० टन था। ये सब अंडों से ही पैदा होते थे। उनके अंडे कितने बड़े होंगे, इसका अनुमान करने के लिये हमारे पास एक ही आधार है। नौ फीट ऊँचा "डिनज़ार" नौ अंगुलियों के बराबर अंडा देता था।

इन जन्तुओं में कुछ पानी में रहते थे। "डिसियोज़ार" इसी प्रकार का जन्तु है। उसके पैर न थे, वह केवल तैरना जानता था। उसकी ऊंचाई ५० फीट थी। उसके मुख में दाँत होते थे। उसको साँस लेने के लिये पानी के ऊपर आना पड़ता था। उसकी बड़ी बड़ी आँखें थीं। वे भूमि पर अंडे भी न देते थे।

इस तरह पक्षी सरीसृप भी पैदा हुए। "टेरज़ार" इसी में से है। चमगादड़ों की तरह इसके पंख होते थे। पंखों की लम्बाई २० फीट होती थी। "आर्कियोटेलीक्स" "टेरानडान" आदि, इस जाति के हैं।

इस प्रकार भूमि, जल, वायु के ये सरीसृप, १५ करोड़ वर्षों तक इस भूमि पर रहकर, यकायक लुप्त हो गये। उनके साथ सरीसृप युग भी समाप्त हो गया।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

मार्च १९५६ : : पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें ।

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए । परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों । परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर निम्नलिखित पते पर भेजनी चाहिये ।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास - २६

जनवरी – प्रतियोगिता – फल

जनवरी के फ़ोटो के लिये निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं ।
इनके प्रेषक को १० रु. का पुरस्कार मिलेगा ।

पहिला फ़ोटो : कैसी बनायी है हमने शकल ? दूसरा फ़ोटो : की है तुमने हमारी नक़ल !

प्रेषक : ए. ए. सैयद, पालनपुर.

जादू के प्रयोग

जब मैं विद्यार्थी था, उन दिनों मैं यह ट्रिक किया करता था। परन्तु अब भी वह ट्रिक दोस्तों को करके दिखाया करता हूँ।

मेज़ पर "मार्वेल" काग़ज़ बिछाता हूँ। उस पर एक सिक्का रख देता हूँ। वहाँ रखे ग्लास पर एक रुमाल डालकर उसे सिक्के पर उलट देता हूँ। रुमाल हटाने पर वहाँ सिक्का कभी न दिखाई देगा। परन्तु फिर ग्लास पर रुमाल रख, उसे एक तरफ़ रख देने से 'मार्वेल' काग़ज़ पर सिक्का प्रेक्षकों को दीखने लगेगा।

इस तरह ग्लास के उलटने पर सिक्का का ग़ायब हो जाना, और उसके हटाने पर सिक्के का दिखाई देना, कितनी ही बार किया जा सकता है।

अब यह बताया जाय कि यह जादू कैसे किया जाता है। यह जादू न तो मेज़ के कारण होता है, न उस पर बिछे काग़ज़ के कारण ही। जादू का भेद ग्लास में है।

एक साधारण ग्लास लीजिए। उसके सिरे पर गोंद लगाइये। गोंद लगाने के बाद ग्लास को "मार्वेल"

कागज़ पर उलटिये। ग्लास का मुख "मार्वेल" कागज़ से चिपक जाता है। फिर ग्लास के मुख के बराबर "मार्वेल" कागज़ गोल गोल काट लीजिये। (जिस प्रकार चित्र में दिखाया गया है) अब ग्लास से जादू किया जा सकता है।

इस ग्लास को मेज़ पर उल्टा रखने पर इसके कागज़ का रंग वही होता है, जो मेज़ पर बिछा हुआ है, अतः प्रेक्षक इसको देख न पायेंगे। वे सोचेंगे कि मामूली ग्लास ही "मार्वेल" कागज़ पर उल्ट रखा है। फिर एक सिका लेकर "मार्वेल" कागज़ पर रखना चाहिये। फिर ग्लास को सिके पर रखिये। परन्तु तुरन्त ग्लास उठा दिया तो प्रेक्षक उस पर चिपके कागज़ को देख लेंगे। इससे रहस्य खुल जायगा।

इसलिये ग्लास उठाने से पहिले वहाँ उपस्थित लोगों में से किसी से एक रुमाल लेकर, ग्लास को उससे ढँककर, तभी उसको सिके पर रखिये। तब रुमाल हटा देने से प्रेक्षकों को सिका न दिखाई देगा। क्योंकि ग्लास पर चिपका "मार्वेल" कागज़ उसको छुपा देता है। क्योंकि यह बात प्रेक्षकों को मालूम नहीं हैं, इसलिये

वे सोचते है कि सिका गायब हो गया है। अगर ग्लास को रुमाल से ढँक कर उठा दिया जाय, तो पहिले की तरह सिका दिखाई देने लगेगा।

यह जादू करते समय, दो ग्लास पास रखना ज़रूरी है। उनमें से तो एक ऐसा होना चाहिये, जिस पर "मार्वेल" कागज़ चिपका हुआ होना चाहिये और दूसरा मामूली। अगर "मार्वेल" कागज़ न मिल सके, तो यह जादू मोटे और रंगीले कागज़ पर भी किया जा सकता है।

(अगर कोई पाठक इस जादू के बारे में और जानकारी चाहते हों, तो प्रोफ़ेसर जी को लिखें। ध्यान रहे कि पत्र अंग्रेज़ी में ही लिखे जाने चाहिये।

उनका पता यों है :—

प्रो० पी. सी. सरकार

मैत्रीमिशन, पो. बा. नं. ७८८८, कलकत्ता-१२

रंगीन चित्र-कथा : चित्र - ७

च्वांग और उसकी पत्नी ने मिलकर पक्षियों के पंखों से कपड़ा तैयार किया था! उस कपड़े पर बेल-बूटी का काम भी किया गया था! तीसरे दिन की शाम तक उस कपड़े पर सूरज और समुद्र के चित्र वे अंकित न कर सके। च्वांग रो पड़ा। उसकी आँखों से जो आँसू कपड़े पर टपके, उसने समुद्र कर रूप धारण कर लिया।

ज्योति भी काम पूरा करने को उतावला हो रही थी। कसीदा का काम करते करते उसकी उँगलियों से खून आने लगा। खून की एक बूँद कपड़े पर पड़ते ही सूरज का रूप उस पर अंकित हो गया! तब राज-वस्त्र तैयार हो गया!

उस वस्त्र को देखकर राजा चकित रह गया। ज्योति को वह अपने महल में ही रखना चाहता था! इसके लिए कोई बहाना चाहिए था! उसने कहा—"मैं अपनी आँखों से देखना चाहता हूँ कि यह सब वह कैसे कर लेती है।"

मैं तो आपके लिए ऐसे कपड़े दस बनाकर दे सकती हूँ। पहले आप इसे पहनकर देख तो लीजिए। हम दोनों ने बड़े परिश्रम से इसे तैयार किया है।"—ज्योति ने राजा से कहा।

राजा बड़ी खुशी से मान गया और नया राज-वस्त्र उसने पहन लिया! ज्योति ने कपड़े में हवा फूँक दी! देखते देखते राज-वस्त्र पर अंकित किया गया समुद्र वास्तविक बन गया और उसमें से बड़ी बड़ी लहरें उठने लगीं।

लहरें बढ़ती ही जा रही थीं। पशु-पक्षी विभाग के मन्त्री, और अन्य बड़े बड़े अधिकारी राजा की रक्षा करने के लिए दौड़े। पर देखते देखते अधिकारियों के साथ साथ राजा बढ़ते हुए पानी की लहरों के अन्दर समा गया।

च्वांग और ज्योति बड़े खुश हुए और उन सब लोगों को मुक्त कर दिया था, जिन्हें राजा ने गुलाम बना लिया था और जिन्हें शादी करने का वादा कर जेल में बन्द कर रखा था। वे सब समुद्र के किनारे आ गये और समुद्र के ऊपर से दीखनेवाले लाल लाल सूरज को देखते खड़े रहे। (समाप्त)

रंगवल्ली
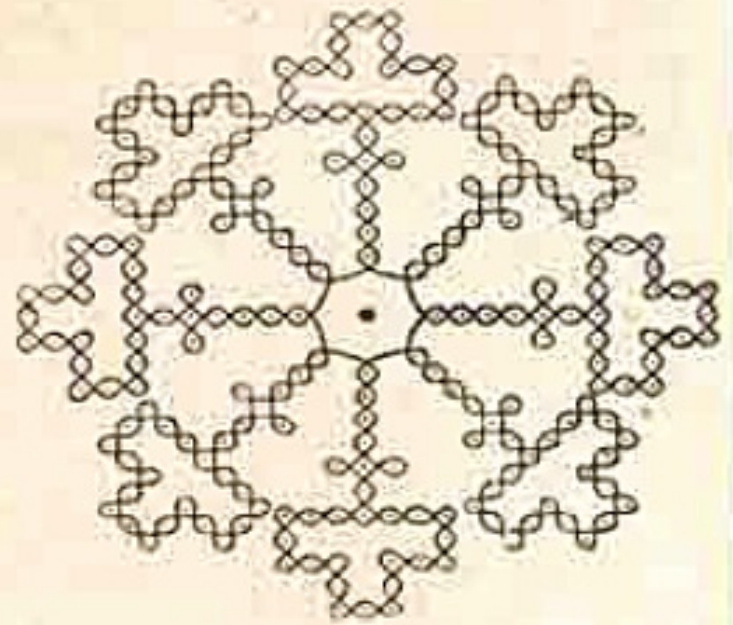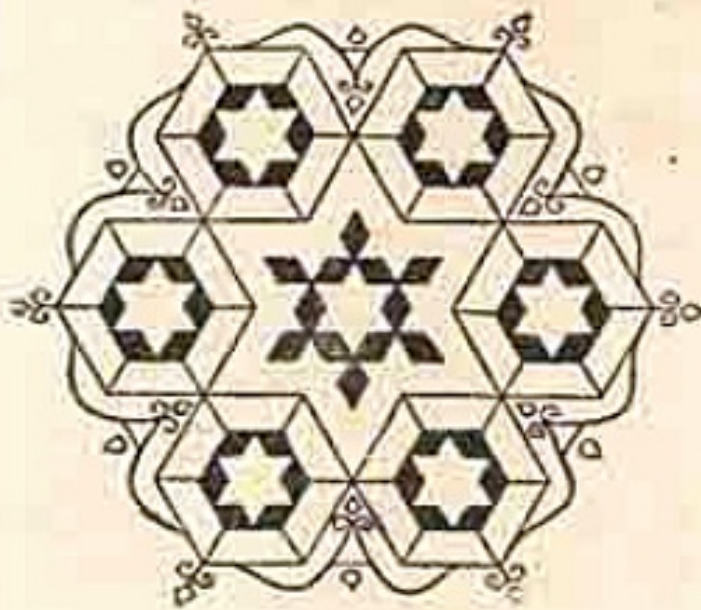
पिछले महीने के 'बताओगे ?' के प्रश्नों के उत्तर :

१. सोलह.

२. फज़ल अली, के. एम. पनिकर और हृदयनाथ कुंज़रु।

३. ऊ. नू. बर्मा के वर्तमान प्रधान मंत्री हैं।

४. ब्रिटेन के।

५. दक्षिण भारत में।

६. यूरोप में—यह फ्रान्स और जर्मनी की सीमा पर बहती है।

७. जिराफ़.

८. जापान.

९. कोलार, यह मैसूर प्रान्त में है।

१०. यह जयपुर के पास है, और राजपूत स्थापत्य कला के लिए प्रसिद्ध है।

११. १,२७२,०००,०००.

१२. अर्जेन्टायना दक्षिणी अमेरीका में है। यह उस महाद्वीप का दूसरा बड़ा गणतन्त्र राष्ट्र है।

प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के आमंत्रण पर सोवियत संघ की मंत्री-परिषद् के अध्यक्ष एन. ए. बुल्गानिन तथा सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के आध्यक्ष-मंडल के सदस्य एन. एस. ख्रुश्चेव की अभी हाल भारत की यात्रा इन दो शान्तिप्रिय राष्ट्रों के बीच बढ़ते हुए सहयोग तथा मैत्री का प्रमाण है।

* * *

इधर कुछ समय पूर्व चित्रकूट के पास पयस्विनी नदी के सुनसान घाट में एक छोटा बच्चा फ़िसलकर डूबने-उतराने लगा और उसकी माँ ने तट पर से चीख-पुकार मचानी आरम्भ कर दी, जिसे उस निर्जन में कोई सुननेवाला न था! माता ने देखा कि एक बन्दर उसके बालक को उठाये लिये आ रहा था। बच्चे को उसकी माँ को सौंपकर बन्दर फ़ौरन् अन्धेरे में छलांग मारकर चलता बना।

* * *

भाकरा-नंगल योजना, जो कि भारत की सबसे बड़ी नदी-घाटी योजना है, अब अपने दसवें वर्ष में चल रही है। बांध की ऊँचाई सतलज के तल से ६८० फुट होगी। यह संसार का सब से ऊँचा बांध होगा। यह १९५९ के अन्त तक बनकर तैयार हो जायगा।
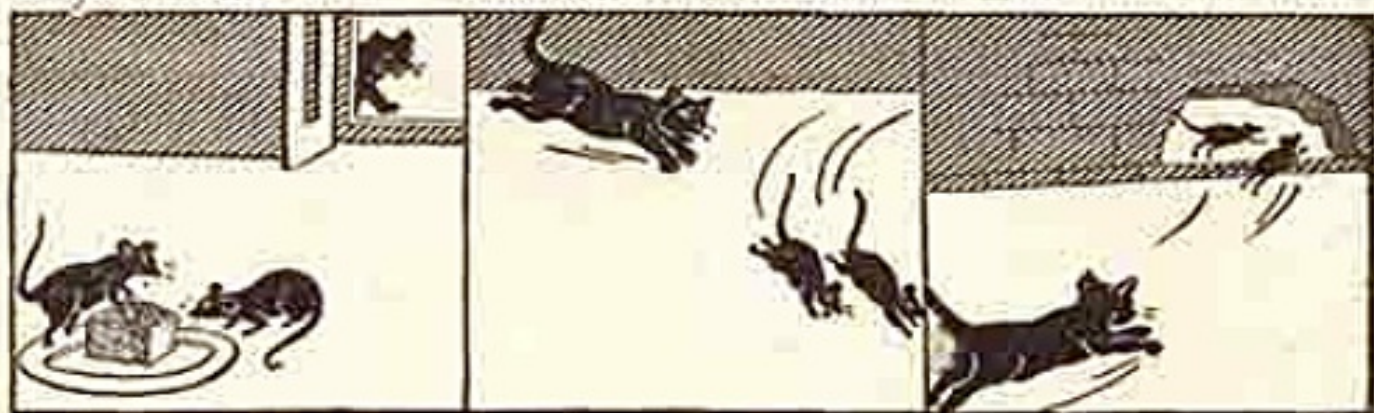
इस पर कुल १७० करोड़ रुपया खर्च होगा, जिसमें से अब १०० करोड़ रुपया खर्च हो चुका है।

* * *

समाचार पत्रों से ज्ञात होता है कि बम्बई सरकार ने प्राथमिक स्कूलों के बालकों की नाटक सम्बन्धी प्रतिभा के वैज्ञानिक आधार पर विकास के लिए सहायता करने का निश्चय किया है। सरकार ने इस सम्बन्ध में अध्यापकों के लिए गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक में ३१५ तालीम शिविर खोलने के हेतु चार हज़ार रुपये की स्वीकृति भी दी है।

* * *

भारत रेल्वे बोर्ड ने साइन बोर्डों केलिए प्रयुक्त होनेवाले हिन्दी पारिभाषिक शब्दों की एक सूची सभी रेलों को भेजी है और निर्देश दिया है कि भविष्य में समस्त देश के स्टेशनों पर इनका प्रयोग किया जाय।

भारत में प्रतिदिन लगभग ३५ लाख व्यक्ति ट्रेनों से यात्रा करते हैं और इनके अतिरिक्त लाखों अन्य व्यक्तियों का रेल्वे से सम्पर्क रहता है। अत: सरल हिन्दी अनुवाद देने का निश्चय किया गया है।

* * *

भारत सरकार द्वारा बनाये जानेवाले तीन इस्पात कारखानों में से पहला उड़ीसा में रूड़केला में बन रहा है। आशा है, इसमें १९५९ तक उत्पादन होने लगेगा। दूसरा कारखाना मध्य प्रदेश में भिलाई में बनेगा। इस्पात का तीसरा कारखाना पश्चिमी बंगाल में, दुर्गापुर में बनाने का निश्चय किया गया है।

चित्र - कथा

त्योहार के एक दिन दास और वास को खाने के लिए एक रोटी मिली। 'टाइगर' भी साथ था। वास ने कहा—'इसे अभी खा लेना ठीक नहीं, थोड़ी देर तक इसे गेंद की तरह उछाल उछालकर खेलेंगे, फिर इसके बाद खा लेंगे।' दास ने हाँ भर दी। खेल शुरु हुआ। 'टाइगर' भी अपने मौके के इन्तज़ार में बैठा था। दोनों बड़े ज़ोर-शोर से खेल रहे थे। वास की असावधानी से रोटी नीचे गिरने ही वाली थी कि 'टाइगर' उसे मुँह में दबोचे बाहर भाग गया। दास और वास देखते रह गये।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26, and Published by him for Chandamama Publications, Madras 26. Controlling Editor: SRI 'CHAKRAPANI'

Photo by Pranlal K. Patel

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

की है तुमने हमारी नक़ल !

प्रेषक :
ए. ए. सैयद, पालनपुर

रंगीन चित्र-कथा चित्र – ७